।।श्री महावीराय नमः।।

।।जय नानेश।।

।।जय रामेश।।

जैन संस्कार पाठ्यक्रम
भाग - 2

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग -2

बारहवां - जनवरी, 2017

प्रतियाँ - 5000

मूल्य - रुपए 10/-

अर्थ सौजन्य - श्री कमलचन्द जी सिपाणी, बैंगलोर

पुस्तक एवं परीक्षा फार्म प्राप्ति स्थल

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर (राज.)
फोन-0151-3292177, 2270261

आचार्य श्री नानेश ध्यान केन्द्र
पद्मिनी मार्ग राणा प्रताप नगर रोड़ , उदयपुर (राज.)
फोन-0294-2490306, 2490717

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर (राज.)
फोन-0151-3292177, 2270261

मुद्रक- नाईस प्रिन्टींग एण्ड बाईण्डिंग, उदयपुर

भूमिका

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा अनेक धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ चलाई जा रही हैं, जिनमें 'धार्मिक परीक्षा बोर्ड' भी एक है, सन् 1974 से ये परीक्षाएँ निरन्तर चल रही हैं जिसके माध्यम से ज्ञानार्जन करने वालों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित कर परीक्षाएँ ली जाती रही हैं। विभिन्न प्रसंगों पर परमागम रहस्यज्ञाता, व्यसनमुक्ति प्रणेता 1008 **श्रद्धेय गुरुवर आचार्य श्री रामलालजी म.सा.** से तत्त्व चर्चा का अवसर प्राप्त होता रहा है। तत्त्व चर्चा के दौरान बदलते परिवेश के अनुरूप नए पाठ्यक्रम की आवश्यकता अनुभूत हुई।

अतएव जैन संस्कार पाठ्यक्रम के नाम से नवीन पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है जिसमें भाग1 से 12 तक प्रस्तुत किए गए हैं, जो वर्ष 2003 से निरन्तर गतिमान है। इससे जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त होगा तथा विशेष ज्ञानार्जन प्राप्त कर जीवन में कुछ पा सकेंगे, ऐसा विश्वास है। पाठ्यक्रम को सुरुचिपूर्ण एवं सुबोध बनाने के लिए साहित्य की विविध विधाओं से सम्पन्न बनाया गया है। इसमें 2016 तक के संशोधनों को समाहित किया गया है।

पाठ्यक्रम के संकलन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जिनका भी मार्गदर्शन एवं सहयोग मिला, उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

सभी श्री संघों एवं चातुर्मासिक क्षेत्रों के धर्मानुरागी भाई-बहिनों से अनुरोध है कि अधिक से अधिक इन परीक्षाओं में भाग लेकर ज्ञान की श्रीवृद्धि में योगदान देवें। इसी शुभेच्छा के साथ।

विनीत

संयोजक - धार्मिक परीक्षा बोर्ड

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

परीक्षा के नियम

परीक्षा में भाग लेने वाले विद्यार्थियों को फार्म भरना आवश्यक है। कम से कम दस परीक्षार्थी होने पर वहाँ परीक्षा केन्द्र खोला जा सकेगा।

1. पाठ्यक्रम – भाग 1 से 12 तक
2. योग्यता – ज्ञानार्जन का अभिलाषी
3. परीक्षा का समय – माह आसोज, बदी पक्ष
4. श्रेणी निर्धारण

   प्रथम श्रेणी – 75% से अधिक

   द्वितीय श्रेणी – 50% से 75%
5. परीक्षा फल – परीक्षा फल का प्रकाशन श्रमणोपासक पत्रिका में तथा परीक्षा केन्द्रों पर उपलब्ध रहेगा।
6. प्रमाण-पत्र – सम्बन्धित परीक्षा केन्द्रों पर प्रमाण-पत्र भिजवाये जाएंगे।
7. पारितोषिक – प्रत्येक परीक्षा में प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा अन्य प्रोत्साहन पुरस्कार।

   – 18 वर्ष से कम उम्र के विद्यार्थियों के लिए 71% से 100% प्रथम श्रेणी।

   35% से 70% द्वितीय श्रेणी।

परीक्षार्थी ध्यान देवें!

यह धार्मिक परीक्षा ज्ञानार्जन एवं जीवन विकास हेतु है। इसमें नकल करना अथवा पुस्तक आदि देखकर लिखना या पूछकर उत्तर लिखना नियम विरुद्ध है। परीक्षा निरीक्षक अनुशासनात्मक कार्यवाही हेतु अधिकृत है।

अनुक्रम

क्रं.	विभाग	पृष्ठ संख्या	अंक 100
I	**सूत्र विभाग**		**35**
	1. सामायिक सूत्र- सार्थ एवं प्रश्नोत्तर	6	
	2. सामायिक लेने की विधि	30	
	3. सामायिक पारने की विधि	32	
	4. प्रश्नोत्तर	33	
II	**तत्त्व विभाग**		**25**
	1. पच्चीस बोल का थोकड़ा (11 बोल तक)	36	
	2. बीस विहरमान	43	
	3. ग्यारह गणधर	43	
	4. अनमोल शिक्षा	43	
	5. श्रृंगार के 12 बोल	44	
	6. महापापी के 12 बोल	44	
III	**कथा विभाग**		**10**
	1. महासती चन्दनबाला	45	
	2. परमनिष्ठावान कामदेव श्रावक	51	
	3. सेवामूर्ति मुनि नन्दिषेण	55	
IV	**काव्य विभाग**		**15**
	1. बारह भावना	58	
	2. साता कीजो जी	59	
	3. आत्म जागरण	60	
V	**सामान्य ज्ञान विभाग**		**15**
	1. चार बातें	61	
	2. सात कुव्यसन	62	
	3. रात्रि भोजन	64	
	4. दोहे	67	
	1. परीक्षा प्रश्न-पत्र	68	

सूत्र विभाग

सामायिक सूत्र, सार्थ एवं प्रश्नोत्तर

नमस्कार मन्त्र

णमो अरिहंताणं।
णमो सिद्धाणं।
णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं।
णमो लोए सव्वसाहूणं।
एसो पंचणमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।।1।।

(श्री कल्पसूत्र मंगलाचरण)

मूल शब्द		अर्थ
अरिहंताणं	-	अरिहन्तों को
णमो	-	नमस्कार हो
सिद्धाणं	-	सिद्ध भगवान को
णमो	-	नमस्कार हो
आयरियाणं	-	आचार्य महाराज को
णमो	-	नमस्कार हो
उवज्झायाणं	-	उपाध्याय महाराज को
णमो	-	नमस्कार हो
लोए	-	लोक में (अढ़ाई द्वीप में वर्तमान)
सव्वसाहूणं	-	सभी साधु महाराज को
णमो	-	नमस्कार हो
एसो	-	यह
पंचणमोक्कारो	-	पंच नमस्कार (पांच परमेष्ठियों को किया हुआ नमस्कार)
सव्वपावप्पणासणो	-	सब पापों का नाश करने वाला है
च	-	और
सव्वेसिं	-	सब
मंगलाणं	-	मंगलों में
पढ़मं	-	प्रथम (प्रधान)
मंगलं	-	मंगल
हवइ	-	है।

भावार्थ- श्री अरिहन्त भगवान, श्री सिद्ध भगवान, श्री आचार्य महाराज, श्री उपाध्याय महाराज और अढ़ाई द्वीप में वर्तमान सभी साधु मुनिराज- इन पाँच परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो। उक्त पाँच परमेष्ठियों को किया जाने वाला नमस्कार सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला है और सब प्रकार के लौकिक और लोकोत्तर मंगलों में प्रधान मंगल है।

प्रश्न- नमस्कार किसे कहते हैं?

उत्तर- दोनों हाथों को जोड़कर ललाट पर लगाते हुए विनम्र भाव से मस्तक झुकाना।

प्रश्न - मन्त्र किसे कहते हैं?

उत्तर - ''मननात् त्रायते इति मंत्रः' अर्थात् जिसका मनन करने से त्राण (रक्षा) होता है। जिसमें अक्षर थोड़े हों और भाव बहुत हों उसे मन्त्र कहते हैं।

प्रश्न - नवकार मंत्र को महामंत्र क्यों कहा जाता है ?

उत्तर - यह मंत्र सभी पापों का नाश करने वाला है। भौतिक मंत्र जहाँ भौतिक आकांक्षा और रक्षा के लिए प्रयुक्त होता है वहीं नमस्कार मंत्र आत्मा की आध्यात्मिक रक्षा करता है। 'रक्षा' अर्थात् आत्मा को राग, द्वेष, कषाय से विमुक्त रखना। इसी दृष्टिकोण से नमस्कार मंत्र को महामंत्र कहा गया है।

प्रश्न - नवकार मंत्र का स्मरण किन भावों से करना चाहिए ?

उत्तर- नवकार मंत्र के पाँच पदों का स्मरण करते हुए ये भाव हों -

1. णमो अरिहंताणं - भंते ! आपने वीतरागता को प्रकट कर लिया है ऐसी वीतरागता मुझे भी प्राप्त हो, घाती कर्म मुझसे शीघ्र दूर हों।

2. णमो सिद्धाणं - भंते ! आपने अष्ट-कर्मों को क्षय कर अनंत सुखों को प्राप्त किया है वैसा ही सुख मेरी आत्मा प्राप्त करे।

3. णमो आयरियाणं - भंते ! जैसा आप शुद्ध ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार का पालन करते हैं, वैसा ही शुद्धाचार मैं भी पालूँ।

4. णमो उवज्झायाणं - भंते ! आप आगमों के रक्षक और शिक्षक हैं, जिन आगमों का अध्ययन कराते हैं, मैं भी उनमें कुशल बनूं।

5. णमो लोए सव्वसाहूणं - भंते ! आप चारित्र- आत्माएं समभावपूर्वक अनेक परिषहों और उपसर्गों को सहन कर सभी जीवों को अभयदान प्रदान करते हुए सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना कर रहे हैं। मैं भी आप जैसा संयमी बनूं।

गुरु वन्दन सूत्र- (तिक्खुत्तो का पाठ)

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि णमंसामि (णमन् सामि) सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वन्दामि।

(श्रीमद् रायप्पसेणी सूत्र 8)

तिक्खुत्तो	-	तीन बार
आयाहिणं	-	दक्षिण तरफ से
पयाहिणं	-	प्रदक्षिणा
करेमि	-	करता हूँ
वंदामि	-	गुणगान (स्तुति) करता हूँ
णमंसामि	-	नमस्कार करता हूँ
सक्कारेमि	-	सत्कार करता हूँ
सम्माणेमि	-	विशेष सम्मान देता हूँ
कल्लाणं	-	कल्याण रूप
मंगलं	-	मंगल रूप (जिसने अहंकार को गला दिया)
देवयं	-	धर्म देव रूप (दिव्य रूप वाले)
चेइयं	-	ज्ञानवंत अथवा सुप्रशस्त मन के हेतु रूप
पज्जुवासामि	-	पर्युपासना करता हूँ
मत्थएण	-	मस्तक नमाकर
वंदामि	-	वन्दना करता हूँ

भावार्थ- हे पूज्य ! दोनों हाथ जोड़कर दाहिनी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा करता हूँ। आपका गुणगान (स्तुति) करता हूँ। पंचांग (दो हाथ, दो घुटने और एक मस्तक- ये पाँच

अंग) नमाकर नमस्कार करता हूँ, आपका सत्कार करता हूँ, आपको सम्मान देता हूँ, आप कल्याण रूप हैं, मंगलरूप हैं, आप धर्मदेव स्वरूप हैं, ज्ञानवंत हैं अथवा मन को प्रशस्त बनाने वाले हैं, ऐसे आप गुरु महाराज की सेवा करता हूँ और मस्तक नमाकर आपको वन्दन करता हूँ।

प्रश्न - आदक्षिण प्रदक्षिणा तीन बार क्यों की जाती है ?

उत्तर - मन, वचन और काया से वन्दनीय की पर्युपासना करने के लिए तीन बार आदक्षिणा की जाती है।

प्रश्न - आदक्षिण प्रदक्षिणा किसे कहते हैं ?

उत्तर - दोनों हाथों को जोड़कर वंदनीय के दाएं और अपने बाएं कान से ऊपर की तरफ ले जाते हुए मस्तक के चारों तरफ घुमाना आदक्षिण प्रदक्षिणा (आवर्तन) कहलाता है।

प्रश्न - वंदना तीन बार क्यों की जाती है ?

उत्तर - वन्दनीय में रहे ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन गुणों की प्राप्ति के लिए वन्दना तीन बार की जाती है।

प्रश्न - वंदना किन भावों से करनी चाहिए ?

उत्तर - वंदना करते हुए वंदनीय के निम्न गुणों को सामने रखें और उन गुणों को अपने में प्रवेश कराने का भाव रखें -

पहली वंदना करते हुए ज्ञान की दृष्टि से उनमें जो विशेषता है उन्हें ध्यान में लें कि अहो ! इनके जीवन में कितना ज्ञान है ? ऐसा ज्ञान मेरे भीतर भी आए।

दूसरी वंदना करते हुए उनके दर्शन गुण का अवलोकन करें अर्थात् तीर्थंकर देवों की वाणी पर व गुरु पर उनकी कितनी श्रद्धा है ? ऐसी श्रद्धा मेरे भीतर भी प्रकट होवे।

तीसरी वंदना करते हुए चारित्र के प्रति अहो भाव उत्पन्न करें। अहो ! इनका जीवन कितना पवित्र है। इनके चारित्र की परिपालना कितनी उत्तम है ? मैं भी ऐसा निर्मल चारित्र पालुं।

प्रश्न - वंदना से क्या लाभ है ?

उत्तर - **1.** वंदना करने से जीव नीच गोत्र कर्म का क्षय करता है और उच्च गोत्र बाँधता है। सभी का प्रिय पात्र बनता है। **2.** जीवन में विनय-भाव आता है। **3.** ज्ञानादि शीघ्र प्राप्त होते हैं। **4.** धर्म-कार्यों में स्फूर्ति रहती है। **5.** पापों का नाश और पुण्य का

लाभ होता है। 6. दुर्गुण नष्ट होते हैं और सद्गुण खिलते हैं। 7. एक दिन हम भी वन्दनीय बन जाते हैं।

प्रश्न - सत्कार किसे कहते हैं ?

उत्तर - आप कल्याणरूप हैं, मंगलरूप हैं, देवरूप हैं और ज्ञानवान हैं इस प्रकार अरिहंतादि की स्तुति करना, उनका स्वागत करना सत्कार कहलाता है।

प्रश्न - सन्मान किसे कहते हैं ?

उत्तर - अरिहंतादि के प्रति भक्ति एवं बहुमान प्रकट करना, सन्मान कहलाता है।

प्रश्न - कल्याण और मंगल किसे कहते हैं ?

उत्तर - मोक्ष को प्राप्त कराने वाले को कल्याण कहते हैं तथा पाप रूपी विघ्न को दूर करने वाले को मंगल कहते हैं।

प्रश्न - पर्युपासना किसे कहते हैं, वह कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर - चारों ओर से मन को हटाकर भावों से गुरु के समीप बैठना ही पर्युपासना है। यह तीन प्रकार की है।

(1) **कायिक पर्युपासना -** नम्र आसन से हाथ जोड़कर अरिहंतादि के सम्मुख सुनने की इच्छा से बैठना।

(2) **वाचिक पर्युपासना -** अरिहंतादि जो उपदेश करे, उसे सत्य कहकर स्वीकार करना।

(3) **मानसिक पर्युपासना -** उपदेश के प्रति अनुराग रखना और पालने की भावना बनाना।

इरियावहिया सूत्र (आलोचना सूत्र, इच्छाकारेणं का पाठ)

इच्छाकारेणं संदिसह, भगवं ! इरिया-वहियं पडिक्कमामि इच्छं इच्छामि पडिक्कमिउं इरिया वहियाए विराहणाए गमणागमणे पाणक्कमणे बीयक्कमणे हरियक्कमणे ओसा उत्तिंग पणग दग मट्टी मक्कडा संताणा संकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया वत्तिया लेसिया संघाइया संघट्टिया परियाविया किलामिया उद्दविया ठाणाओ ठाणं संकामिया जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

(हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 572)

भगवं	-	हे भगवन् ! हे गुरु महाराज !
इच्छाकारेणं	-	इच्छापूर्वक

संदिसह	-	आज्ञा दीजिये (कि मैं)
इरियावहियं	-	ईर्यापथिकी क्रिया का (चलने से लगने वाली क्रिया का)
पडिक्कमामि	-	प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ।
इच्छं	-	आपकी आज्ञा प्रमाण है

उद्देश्य

इरियावहियाए	-	मार्ग में चलने से होने वाली
विराहणाए	-	विराधना से
पडिक्कमिउं	-	प्रतिक्रमण करने की
इच्छामि	-	इच्छा करता हूँ

विराधना किस तरह होती है ?

गमणागमणे	-	जाने आने में
पाणक्कमणे	-	किसी प्राणी को दबाया हो
बीयक्कमणे	-	बीज को दबाया हो
हरियक्कमणे	-	वनस्पति को दबाया हो
ओसा	-	ओस
उत्तिंग	-	कीड़ी नगरा
पणग	-	पाँच रंग की काई (लीलन-फूलन)
दग	-	कच्चा पानी
मट्टी	-	सचित्त मिट्टी (और)
मक्कडा संताणा	-	मकड़ी के जालों को
संकमणे	-	कुचला हो
मे	-	मैंने
एगिंदिया	-	एक इन्द्रिय वाले
बेइंदिया	-	दो इन्द्रिय वाले
तेइंदिया	-	तीन इन्द्रिय वाले
चउरिंदिया	-	चार इन्द्रिय वाले
पंचिंदिया	-	पाँच इन्द्रिय वाले
जे	-	जो

जीवा	-	जीव हैं (उन्हें)
विराहिया	-	पीड़ित किया हो

विराधना के दस प्रकार

01. अभिहया	-	सम्मुख आते हुए को हना हो
02. वत्तिया	-	धूल आदि से ढँका हो
03. लेसिया	-	मसला हो
04. संघाइया	-	इकट्ठा किया हो
05. संघट्टिया	-	संघट्टा (छूआ) किया हो
06. परियाविया	-	परिताप (कष्ट) पहुंचाया हो
07. किलामिया	-	किलामना उपजाई हो मृत तुल्य किया हो
08. उद्दविया	-	हैरान या भयभीत किया हो
09. ठाणाओ	-	एक जगह से
ठाणं	-	दूसरी जगह
संकामिया	-	रखा हो
10. जीवियाओ	-	जीवन से
ववरोविया	-	रहित किया हो

प्रतिक्रमण

तस्स	-	उसका
दुक्कडं	-	पाप, दुष्कृत
मि	-	मेरे लिए
मिच्छा	-	मिथ्या (निष्फल) हो

भावार्थ - शिष्य- गुरु महाराज ! इच्छापूर्वक आज्ञा दीजिये कि मैं ईर्यापथिकी क्रिया का प्रतिक्रमण करूँ। गुरु की अनुमति पाने पर शिष्य कहता है कि आपकी आज्ञा प्रमाण है। मैं ईर्यापथिकी क्रिया का प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ अर्थात् मार्ग में चलने से हुई विराधना से निवृत्त होना चाहता हूँ। मार्ग में आते जाते किसी प्राणी को दबाया हो, सचित्त बीज तथा हरी वनस्पति को कुचला हो, ओस, कीड़ी नगरा, पाँचों वर्ण की लीलन-फूलन, सचित्त जल, सचित्त मिट्टी और मकड़ी के जालों को रौंदा (कुचला) हो। मैंने किन्हीं जीवों

की हिंसा की हो जैसे एक इन्द्रिय वाले - पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति, दो इन्द्रिय वाले- शंख, सीप, गिंडोला आदि, तीन इन्द्रिय वाले- कुंथुआ, जूं, लीख, कीड़ी, खटमल, चींचड़ आदि, चार इन्द्रिय वाले- मक्खी, भंवरा, बिच्छू, टिड्डी, पतंगिया आदि, पाँच इन्द्रिय वाले- मनुष्य, तिर्यंच-जलचर, स्थलचर और खेचर आदि। सन्मुख आते हुए इन्हें मारा हो, इन्हें धूल आदि से ढँका हो, जमीन पर या आपस में रगड़ा हो, इकट्ठा करके इन्हें दुःख पहुंचाया हो तथा छूकर पीड़ा दी हो। इन्हें क्लेश पहुंचाया हो, मृत तुल्य किया हो। हैरान भयभीत किया हो, एक जगह से दूसरी जगह रखा हो, इनका जीवन नष्ट किया हो, इनसे होने वाले पाप मेरे लिए निष्फल हों अर्थात् जानते-अजानते विराधना आदि से कषाय द्वारा मैंने जो पाप कर्म बाँधा हो, उसके लिए मैं हृदय से पश्चाताप करता हूँ, जिससे कि निर्मल परिणाम द्वारा पाप कर्म शिथिल हो जावे और मुझे उसका तीव्र फल भोगना न पड़े।

प्रश्न - इसे आलोचना - पाठ क्यों कहते हैं ?

उत्तर - इससे जीव-विराधना की आलोचना की जाती है।

प्रश्न - विराधना किसे कहते हैं ?

उत्तर - व्रत को दूषित करने वाली प्रवृत्ति तथा विधि के अनुसार आचरण नहीं करना विराधना है, जीवों को दुःख पहुँचाने वाली क्रिया भी विराधना है।

प्रश्न - आराधना किसे कहते हैं ?

उत्तर- जिनेश्वर देवों की जैसी आज्ञा है, वैसा ही आचरण करना।

प्रश्न - जीव-विराधना न हो इसका उपाय क्या है ?

उत्तर- यतना रखना।

प्रश्न - यतना किसे कहते हैं ?

उत्तर - जीव-विराधना का प्रसंग न आवे, इसका पहले से ही ध्यान रखना तथा प्रसंग आने पर जीव-विराधना टालने का प्रयत्न करना।

प्रश्न - क्या 'मिच्छा मि दुक्कडं' कहने से ही पाप धुल जाते हैं ?

उत्तर - नहीं। बिना मन केवल जीभ से कहने पर पाप निष्फल नहीं होते। मन से पश्चाताप पूर्वक कहने से पाप अवश्य ही निष्फल हो जाते हैं।

उत्तरीकरण-सूत्र (तस्स उत्तरी का पाठ)

तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं । अण्णत्थ ऊससिएणं,

णीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाईएणं, उड्डुएणं वायनिसग्गेणं, भमलीए, पित्त–मुच्छाए, सुहुमेहिं अंग संचालेहिं, सुहुमेहिं खेल संचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठि–संचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ, हुज्ज मे काउस्सग्गो जाव अरिहंताणं भगवंताणं णमोक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि। (हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 778)

तस्स	-	उसकी- दूषित आत्मा की
उत्तरीकरणेणं	-	विशेष उत्कृष्टता के लिए
पायच्छित्तकरणेणं	-	प्रायश्चित करने के लिए
विसोहिकरणेणं	-	विशेष शुद्धि करने के लिये
विसल्लीकरणेणं	-	शल्य से रहित करने के लिये
पावाणं	-	पाप
कम्माणं	-	कर्मों का
निग्घायणट्ठाए	-	नाश करने के लिए
काउस्सग्गं	-	कायोत्सर्ग, शरीर के व्यापारों का त्याग
ठामि	-	करता हूँ
ऊससिएणं	-	उच्छ्वास अर्थात् श्वास लेना
णीससिएणं	-	निःश्वास अर्थात् श्वास निकालना
खासिएणं	-	खांसी आना
छीएणं	-	छींक आना
जंभाइएणं	-	उबासी आना
उड्डुएणं	-	डकार आना
वायनिसग्गेणं	-	अधो वायु निकलना
भमलीए	-	चक्कर आना
पित्तमुच्छाए	-	पित्त विकार से मूर्च्छा आना
सुहुमेहिं	-	सूक्ष्म (थोड़ा-सा)
अंगसंचालेहिं	-	अंग का संचार (हिलना)
सुहुमेहिं	-	सूक्ष्म (थोड़ा-सा)
खेल संचालेहिं	-	कफ का संचार

सुहुमेहिं	-	सूक्ष्म (थोड़ा-सा)
दिट्ठिसंचालेहिं	-	दृष्टि का चलना
एवमाइएहिं	-	इत्यादि
आगारेहिं	-	आगारों के
अण्णत्थ	-	सिवाय दूसरे प्रकार से
मे	-	मेरा
काउस्सग्गो	-	कायोत्सर्ग
अभग्गो	-	अभग्न
अविराहिओ	-	अखंडित
हुज्ज	-	हो
जाव	-	जब तक
अरिहंताणं	-	अरिहंत
भगवंताणं	-	भगवान को
णमोक्कारेणं	-	नमस्कार करके
न पारेमि	-	न पारूं
ताव कायं	-	तब तक काया को
ठाणेणं	-	स्थिर करके
मोणेणं	-	वचन से मौन रहकर
झाणेणं	-	मन से शुभ ध्यान धर कर
अप्पाणं	-	आत्मा को (पहले की अपनी पापी)
वोसिरामि	-	अलग करता हूँ

भावार्थ- ईर्यापथिकी क्रिया से लगा हुआ आत्मा का मैल 'मिच्छा मि दुक्कडं' से कुछ अंशों में दूर हुआ। उसे अधिक शुद्ध और निर्मल बनाकर पाप कर्मों का नाश करने के लिए कायोत्सर्ग करता हूँ। आत्मा को संस्कारित और प्रशस्त बनाने के लिए पापों का प्रायश्चित्त आवश्यक है। प्रायश्चित के लिए आत्मा शुद्ध होनी चाहिये एवं आत्मशुद्धि के लिए शल्यों (माया, निदान और मिथ्यादर्शन) का दूर होना जरूरी है इसलिये मैं शल्य दूर करके आत्मा को शुद्ध करता हूँ। फिर प्रायश्चित द्वारा आत्मा को प्रशस्त बनाकर पाप कर्मों

का नाश करने के लिए काउस्सग्ग (कायोत्सर्ग) करता हूँ।

शरीर के व्यापारों का त्याग काउस्सग्ग है। चूंकि इस प्रकार का सर्वथा त्याग संभव नहीं है। इसलिए काउस्सग्ग में जो आगार रखे जाते हैं वे आगार इस प्रकार हैंः-

1. श्वास का लेना और निकालना **2.** खाँसना **3.** छींकना**4.** जंभाई आना **5.** डकार आना **7.** अपान वायु का सुरना, **8.** चक्कर आना **9.** पित्त प्रकोप से मूर्च्छा आ जाना **10.** अंगों का सूक्ष्म हलन चलन **11.** कफ का सूक्ष्म संचार **12.** दृष्टि का सूक्ष्म संचालन आदि इनके होते रहने पर भी काउस्सग्ग नहीं टूटता, परन्तु इनके सिवाय अन्य स्वाधीन क्रियाओं का मेरे त्याग है। अपवाद स्वरूप इन क्रियाओं के सिवाय कोई भी क्रिया मुझसे न हो और इससे मेरा काउस्सग्ग सर्वथा अभग्न और अखण्डित रहे यही मेरी अभिलाषा है। 'नमो-अरिहंताणं' शब्द द्वारा अरिहंत भगवान को नमस्कार करके काउस्सग्ग को पूर्ण न करूं तब तक शरीर से निश्चल बनकर, वचन से मौन रहकर और मन से शुभ ध्यान धरकर सब अशुभ व्यापारों का त्याग करता हूँ।

प्रश्न - इसे उत्तरीकरण का पाठ क्यों कहते हैं?

उत्तर- इससे आत्मा को विशेष उत्कृष्ट बनाने के लिए कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा की जाती है।

प्रश्न- आगार किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रत्याख्यान में रहने वाली छूट को आगार कहते हैं।

प्रश्न- कायोत्सर्ग में आगार क्यों रखे जाते हैं?

उत्तर - क्योंकि जीव-रक्षा आदि के लिए कायोत्सर्ग बीच में छोड़ना पड़ता है तथा कायोत्सर्ग में श्वास आदि स्वाभाविक शारीरिक क्रियाएँ रोकी नहीं जा सकती।

प्रश्न - प्रायश्चित किसे कहते हैं?

उत्तर - जिससे पाप नष्ट होकर आत्मा शुद्ध बने।

प्रश्न- विशुद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर - अच्छे परिणामों (विचारों) से आत्मा को विशेष शुद्ध बनाना।

प्रश्न - शल्य किसे कहते हैं?

उत्तर- शल्य अर्थात् काँटा। आत्मा के भीतर लगा हुआ घाव (शल्य) जिससे आत्मा पीड़ित होती रहती है।

चतुर्विंशतिस्तव सूत्र (लोगस्स का पाठ)

लोगस्सुज्जोयगरे*, धम्म-तित्थयरे जिणे ।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ।।1।।

उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ।।2।।

सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयल-सिज्जंस-वासुपुज्जं च ।
विमल-मणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ।।3।।

कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ।।4।।

एवं मए-अभिथुआ, विहुय-रयमला पहीण-जर-मरणा।
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयन्तु ।।5।।

कित्तिय-वंदिय-महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिन्तु ।।6।।

चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागरवरगंभीरा, सिद्धासिद्धिं मम दिसंतु ।।7।।

(हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 493-509)

लोगस्सुज्जोयगरे	-	लोक में प्रकाश करने वाले
धम्मतित्थयरे	-	धर्म रूपी तीर्थ को स्थापित करने वाले
जिणे	-	जिनेन्द्र (राग, द्वेष को जीतने वाले)
अरिहंते	-	अरिहन्त भगवान, कर्म रूप शत्रु का नाश करने वाले
चउवीसंपि	-	चौबीसों
केवली	-	केवलज्ञानी तीर्थंकरों की
कित्तइस्सं	-	मैं स्तुति करूंगा
उसभं च	-	श्री ऋषभदेव स्वामी को और
अजियं	-	श्री अजितनाथ स्वामी को
वंदे	-	वंदना करता हूँ
संभवं च		श्री संभवनाथ स्वामी को और
अभिणंदणं	-	श्री अभिनन्दन स्वामी को

* प्राचीन प्रतियों के अनुसार लोगस्सुज्जोयगरे प्रामाणिक है।

सुमइं च	-	श्री सुमतिनाथ स्वामी को और
पउमप्पहं	-	श्री पद्मप्रभ स्वामी को
सुपासं	-	श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी को और
चंदप्पहं	-	श्री चन्द्रप्रभ
जिणं	-	जिनेश्वर को
वंदे	-	वंदना करता हूँ
सुविहिं च		श्री सुविधिनाथ स्वामी को और
पुप्फदंतं	-	श्री पुष्पदंत (सुविधिनाथ का दूसरा नाम) स्वामी को
सीअल	-	श्री शीतलनाथ स्वामी को
सिज्जंस	-	श्री श्रेयांसनाथ स्वामी को
वासुपुज्जं च		श्री वासुपूज्य स्वामी को और
विमलं च	-	विमलनाथ स्वामी को और
अणंतं	-	श्री अनन्तनाथ स्वामी को
जिणं	-	जिन-रागद्वेष को जीतने वाले
धम्मं च	-	श्री धर्मनाथ स्वामी को और
संतिं	-	श्री शांतिनाथ स्वामी को
वंदामि	-	वंदना करता हूँ
कुंथुं	-	श्री कुंथुनाथ स्वामी को
अरं च	-	श्री अरनाथ स्वामी को और
मल्लिं	-	श्री मल्लिनाथ स्वामी को
वंदे	-	वन्दना करता हूँ
मुणिसुव्वयं	-	श्री मुनिसुव्रत स्वामी को
नमिजिणं च	-	श्री नमिनाथ जिनेश्वर को और
रिट्ठनेमिं	-	श्री अरिष्टनेमि (श्री नेमिनाथ) स्वामी को
पासं	-	श्री पार्श्वनाथ स्वामी को
तह	-	तथा
वद्धमाणं च	-	श्री वर्द्धमान (महावीर) स्वामी को
वंदामि	-	मैं वंदना करता हूँ
एवं	-	इस प्रकार
म ए	-	मेरे द्वारा
अभिथुआ	-	स्तुति किये हुए

विहूय-रयमला	-	पाप रज के मल से रहित
पहीणजरमरणा	-	बुढ़ापे तथा मरण से मुक्त
तित्थयरा	-	तीर्थ की स्थापना करने वाले
चउवीसंपि		चौबीसों
जिणवरा	-	जिनेश्वर देव
मे	-	मुझ पर
पसीयंतु	-	प्रसन्न हो
कित्तिय	-	वाणी से कीर्तन किये हुए
वंदिय	-	काया से वन्दन किये हुए
महिया	-	मन से पूजन किये हुए
जे	-	जो
लोगस्स	-	लोक में
उत्तमा	-	उत्तम
सिद्धा	-	सिद्ध भगवान हैं
ए	-	वे
आरुग्गबोहिलाभं	-	आरोग्य अर्थात् मोक्ष के लिये परभव में सम्यक्त्व का लाभ और
समाहिवरमुत्तमं	-	सर्वोत्कृष्ट भाव समाधि को
दिंतु	-	देवें
चंदेसु	-	चन्द्रमाओं से भी
निम्मलयरा	-	विशेष निर्मल
आइच्चेसु	-	सूर्यों से भी
अहियं	-	अधिक
पयासयरा	-	प्रकाश करने वाले
सागरवरगंभीरा	-	महासमुद्र के समान गंभीर
सिद्धा	-	सिद्ध भगवान
मम	-	मुझको
सिद्धिं	-	सिद्धि (मोक्ष)
दिसंतु	-	देवें।

भावार्थ - (तीर्थंकरों की स्तुति) तीनों लोकों में धर्म का उद्योत करने वाले, धर्म

तीर्थ की स्थापना करने वाले, राग-द्वेष आदि अन्तरंग शत्रुओं पर विजय पाने वाले चौबीस केवलज्ञानी तीर्थंकरों की मैं स्तुति करूंगा।

सर्वश्री ऋषभदेवजी, अजितनाथजी, संभवनाथजी, अभिनन्दनजी, सुमतिनाथजी, पद्मप्रभजी, सुपार्श्वनाथजी, चन्द्रप्रभजी, सुविधिनाथजी, शीतलनाथजी, श्रेयांसनाथजी, वासुपूज्यजी, विमलनाथजी, अनन्तनाथजी, धर्मनाथजी, शांतिनाथजी, कुंथुनाथजी, अरनाथजी, मल्लिनाथजी, मुनिसुव्रतजी, नमिनाथजी, अरिष्टनेमिजी, (नेमिनाथजी), पार्श्वनाथजी और महावीर स्वामीजी इन चौबीस जिनेश्वरों की मैं स्तुति करता हूँ और उन्हें नमस्कार करता हूँ।

उपरोक्त प्रकार से मैंने जिनकी स्तुति की है जो कर्म मल से रहित है, जो जरा और मरण से मुक्त है और जो तीर्थ के प्रवर्तक है वे चौबीसों जिनेश्वर देव मुझ पर प्रसन्न हों। जिनका वाणी से कीर्तन, काया से वन्दन और मन से भावपूजन किया गया है, जो सम्पूर्ण लोक में उत्तम है और जो सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं, वे भगवान मुझको मोक्ष प्राप्ति के लिए बोधि लाभ दे अर्थात जिनधर्म की प्राप्ति करावें तथा सर्वोत्कृष्ट भावसमाधि प्रदान करें।

जो चन्द्रमाओं से भी निर्मल है, सूर्यों से भी विशेष प्रकाशमान है, और स्वयम्भूरमण नामक महासमुद्र के समान गंभीर हैं ऐसे सिद्ध भगवान मुझको सिद्धि (मोक्ष) देवें। यद्यपि राग-द्वेष रहित होने से भगवान न किसी पर प्रसन्न होते हैं, न कुछ देते ही हैं, पर उनका ध्यान करने से चित्त शुद्धि द्वारा अभिलाषित फल की प्राप्ति होती है। जिस तरह चिंतामणि रत्न जड़ होने पर भी उससे वांछित फल की प्राप्ति होती है।

प्रश्न- इसे चतुर्विंशतिस्तव पाठ क्यों कहते हैं ?

उत्तर- इसमें चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की जाती है।

प्रश्न- क्या तीर्थंकर किसी पर प्रसन्न होते हैं ?

उत्तर - नहीं। क्योंकि वे राग-द्वेष रहित होते हैं।

प्रश्न- तब 'तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हो' ऐसी प्रार्थना क्यों की जाती हैं ?

उत्तर- इसलिए कि ऐसी प्रार्थना से हमारी भावना तीर्थंकरों की आज्ञा के अनुरूप प्रवृत्ति करने की बनती हैं।

प्रश्न- महापुरुषों का स्मरण करने से क्या लाभ होते हैं ?

उत्तर- **1.** महापुरुषों का स्मरण हमारे हृदय को पवित्र बनाता है। **2.** वासनाओं की अशांति को दूर कर अखंड आत्म-शांति का आनंद देता है। **3.** प्रभु का मंगलमय पवित्र नाम- स्मरण अंतरात्मा में ज्ञान-प्रकाश फैलाता है। **4.** मनुष्य जैसी श्रद्धा करता है, जैसा ध्यान, संकल्प और चिंतन करता है, वैसा ही बन जाता है। **5.** यह आत्मा से परमात्मा बनने का पथ है।

कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ*

कायोत्सर्ग (काउस्सग्ग) में आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान शुक्लध्यान न ध्याया हो, कायोत्सर्ग में मन, वचन, काया के योग चलित हुए हों तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 454)

प्रश्न- कितने दोषों को टालकर कायोत्सर्ग करना चाहिए ?

उत्तर- 19 दोषों को टालकर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

प्रश्न- ध्यान और कायोत्सर्ग में क्या अंतर है ?

उत्तर- कायोत्सर्ग का तात्पर्य है अमुक समय तक श्वास निःश्वास आदि आगारों को रखते हुए शरीर एवं वचन की प्रवृत्ति का त्याग करना। ध्यान का तात्पर्य है चित्त को किसी विषय में एकाग्र करना। कायोत्सर्ग निवृत्ति प्रधान है। कायोत्सर्ग करने से जब देहाध्यान दूर हट जाता है तत्पश्चात् चित्त को लोगस्स आदि किसी विषय पर एकाग्र करना ध्यान की व्यावहारिक प्रक्रिया है।

प्रतिज्ञा सूत्र (करेमि भंते का पाठ)

करेमि भंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव-नियमं卐 पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

---

* श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के तीसवें अध्ययन में ध्यान के विषय में कहा गया है कि 'अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, धम्म सुक्काणि झायाए' यानी ध्यान में आर्त्त, रौद्र को छोड़कर धर्म शुक्ल ध्यान ध्याना चाहिए। इस जिनोक्तविधि में लगे दोषों की शुद्धि के लिए ध्यान के बाद यह पाठ बोलना आवश्यक है कि कायोत्सर्ग में आर्त्तध्यान रौद्र ध्यान ध्याया हो धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान न ध्याया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं॥

卐 जाव-नियमं के स्थान पर जितनी सामायिक लेनी हो वह बोलें।

भंते	-	हे भगवान !
सामाइयं	-	सामायिक को
करेमि	-	मैं ग्रहण करता हूँ
सावज्जं	-	सावद्य (पाप सहित)
जोगं	-	व्यापार का
पच्चक्खामि	-	प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूँ
जाव	-	जब तक
नियमं	-	इस नियम को
पज्जुवासामि	-	मैं धारण करता रहूँ तब तक (पर्युपासना)
दुविहं	-	दो करण से
तिविहेणं	-	तीन प्रकार के योग से अर्थात्
मणसा	-	मन से
वयसा	-	वचन से
कायसा	-	काया से
न करेमि	-	सावद्य योग को न करूंगा
न कारवेमि	-	न दूसरों से कराऊंगा
भंते	-	हे भगवान !
तस्स	-	उससे (पहले के पाप से)
पडिक्कमामि	-	मैं निवृत्त होता हूँ।
निंदामि	-	उस पाप की आत्मसाक्षी से निंदा करता हूँ
गरिहामि	-	गुरु साक्षी से गर्हा निन्दा करता हूँ
अप्पाणं	-	अपनी आत्मा को उस पाप व्यापार से
वोसिरामि	-	हटाता हूँ, अलग करता हूँ....

भावार्थ- मैं सामायिक व्रत को ग्रहण करता हूँ। (राग द्वेष से हटकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र में लगना ही सामायिक है।) मैं पाप जनक व्यापारों का त्याग करता हूँ। जब तक मैं इस नियम का पालन करता हूँ तब तक मन, वचन और काया इन तीनों योगों द्वारा पाप व्यापार न स्वयं करूंगा और न दूसरों से कराऊंगा। हे स्वामिन् ! पूर्वकृत पाप से मैं निवृत होता हूँ हृदय से मैं उसे बुरा समझता हूँ और गुरु के सामने उसकी मैं निन्दा करता हूँ। इस

प्रकार मैं अपनी आत्मा को पाप क्रिया से छुड़ाता हूँ।

प्रश्न- भगवान किसे कहते हैं?

उत्तर- साधारणतया अरिहंत तथा सिद्ध को भगवान कहा जाता है परन्तु यहाँ आचार्य आदि गुरु को भी भगवान कहा गया है।

प्रश्न- सामायिक किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसके द्वारा समभाव की प्राप्ति हो।

प्रश्न- सामायिक में किसका त्याग किया जाता है?

उत्तर- सामायिक में सावद्य योगों (अठारह पापों की प्रवृत्ति) का त्याग किया जाता है।

प्रश्न- करण किसे कहते हैं?

उत्तर- करने, कराने और करते हुए का अनुमोदन करने को करण कहते हैं।

प्रश्न- योग किसे कहते हैं?

उत्तर- करण के साधन को योग कहते हैं। मन, वचन और काया ये तीन योग हैं।

प्रणिपात सूत्र (शक्रस्तव, णमोत्थु णं का पाठ)

णमोत्थु णं अरिहंताणं, भगवंताणं, आइगराणं, तित्थयराणं, सयं संबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवर-पुंडरीयाणं, पुरिस-वर-गंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं, लोगहिआणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवर-चाउरन्त-चक्क-वट्टीणं, दीवो ताणं सरणं* गई-पइट्ठा, अप्पडि-हय-वर-नाण-दंसण-धराणं विअट्ट-छउ-माणं जिणाणं जावयाणं, तिण्णाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं मोयगाणं , सव्वन्नूणं सव्व-दरिसीणं सिव-मयल-मरुअ-मणन्त-मक्खय-मव्वाबाह-मपुणराविति-सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं*, णमो जिणाणं जिअभयाणं ।

(श्रीमद् औपपातिक सूत्र 12, कल्पसूत्र शक्रस्तव)

नोट : (-) इस चिन्ह वाले स्थान पर थोड़ा विराम लेकर आगे के पाठ का उच्चारण करना चाहिये।

* प्राचीन प्रतियों के अनुसार 'सरणं' शब्द शुद्ध है।
* दूसरी बार णमोत्थुणं बोलने के समय 'ठाणं संपत्ताणं' के बदले ठाणं संपाविउकामाणं' बोलना चाहिए। ठाणं संपाविउकामाणं - अर्थात् सिद्धि स्थान को प्राप्त करने वाले।

अरिहंताणं भगवंताणं	-	सभी अरिहंत भगवान को
णमोत्थु णं	-	नमस्कार हो
आइगराणं	-	धर्म की आदि (प्रारंभ) करने वाले
तित्थयराणं	-	धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले
सयंसंबुद्धाणं	-	अपने आप ही बोध पाये हुए
पुरिसुत्तमाणं	-	पुरुषों में श्रेष्ठ
पुरिससीहाणं	-	पुरुषों में सिंह के समान
पुरिस-वर पुंडरिआणं	-	पुरुषों में श्रेष्ठ श्वेत कमल के समान
पुरिसवर-गंध-हत्थीणं	-	पुरुषों में श्रेष्ठ गंधहस्ती के समान
लोगुत्तमाणं	-	लोक में उत्तम
लोगणाहाणं	-	लोक के नाथ
लोगहिआणं	-	लोक का हित करने वाले,
लोगपईवाणं	-	लोक के लिए दीपक के समान
लोगपज्जोयगराणं	-	लोक में उद्योत करने वाले
अभयदयाणं	-	अभय देने वाले
चक्खुदयाणं	-	ज्ञान रूपी नेत्र देने वाले
मग्गदयाणं	-	मोक्ष मार्ग के दाता
सरणदयाणं	-	शरण देने वाले
जीव दयाणं	-	संयम का ज्ञानरूपी जीवन देने वाले
बोहिदयाणं	-	बोध अर्थात् सम्यक्त्व देने वाले
धम्मदयाणं	-	धर्म के दाता
धम्मदेसयाणं	-	धर्म के उपदेशक
धम्मनायगाणं	-	धर्म के नायक
धम्मसारहीणं	-	धर्म के सारथी
धम्मवरचाउरन्तचक्कवट्टीणं	-	चार गति का अन्त करने वाले, धर्म के श्रेष्ठ चक्रवर्ती
दीवो	-	संसार समुद्र में द्वीप के समान
ताणं	-	रक्षक रूप
सरणं	-	शरणभूत
गई	-	गति (आश्रय) रूप

पईट्ठा	-	संसार-कूप में गिरते हुए प्राणियों के लिये आधार रूप
अप्पडिहयवर	-	अप्रतिहत (बाधा रहित) तथा श्रेष्ठ
नाणदंसणधराणं	-	ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले
विअट्टछउमाणं	-	छद्म अर्थात् घाती कर्म रहित
जिणाणं	-	स्वयं राग द्वेष को जीतने वाले
जावयाणं	-	औरों को जिताने वाले
तिण्णाणं	-	स्वयं संसार से तिरे हुए तथा
तारयाणं	-	दूसरों को तारने वाले
बुद्धाणं	-	स्वयं बोध पाये हुए तथा
बोहयाणं	-	दूसरों को बोध प्राप्त कराने वाले
मुत्ताणं	-	स्वयं कर्म बंधन से छूटे हुए
मोयगाणं	-	दूसरों को छुड़ाने वाले
सव्वण्णूणं	-	सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाले)
सव्वदरिसीणं	-	सर्वदर्शी (सब कुछ देखने वाले)
सिवं	-	उपद्रवरहित, कल्याण स्वरूप
अयलं	-	अचल (स्थिर)
अरूअं	-	अरूज (रोग रहित)
अणन्तं	-	अनन्त (अन्त से रहित)
अक्खयं	-	क्षय रहित
अव्वाबाहं	-	बाधा (पीड़ा) रहित
अपुणरावित्ति	-	पुनरागमन रहित ऐसे
सिद्धिगइनामधेयं	-	सिद्धि गति नामक
ठाणं	-	स्थान को
संपत्ताणं	-	प्राप्त हुए
जिअभयाणं	-	भय को जीतने वाले
जिणाणं	-	जिनेश्वर भगवन्तों को
णमो	-	नमस्कार हो
संपाविउकामाणं	-	प्राप्त होने वाले

भावार्थ – अरिहन्त भगवान को मेरा नमस्कार हो, जो धर्म की आदि करने वाले हैं, साधु साध्वी, श्रावक-श्राविका रूपी चार तीर्थों की स्थापना करने वाले हैं, दूसरों के उपदेश के बिना ही बोध को प्राप्त कर चुके हैं, सब पुरुषों में उत्तम हैं, पुरुषों में सिंह के समान निर्भय हैं, पुरुषों में कमल के समान अलिप्त हैं, पुरुषों में प्रधान गन्धहस्ति के समान हैं, लोक में उत्तम हैं, लोक के नाथ हैं, लोक के हितकारक हैं, लोक में प्रदीप के समान प्रकाश करने वाले हैं, लोक में अज्ञान रूप अन्धकार का नाश करने वाले हैं, दुःखियों को अभयदान देने वाले हैं, अज्ञान से अन्धे लोगों को ज्ञान रूप नेत्र देने वाले हैं, मार्ग भ्रष्ट को मार्ग दिखाने वाले हैं, संयम या ज्ञान रूप जीवन देने वाले हैं, शरणागत को शरण देने वाले हैं, सम्यक्त्व प्रदान करने वाले हैं, धर्म का दान करने वाले हैं, जिज्ञासुओं को धर्म का उपदेश देने वाले हैं, धर्म के नायक हैं, धर्म के सारथी (संचालक) हैं, चार गति का अन्त करने वाले, धर्म रूपी चक्र को धारण करने वाले अतएव प्रधान धर्म-चक्रवर्ती रूप हैं, संसार रूप समुद्र में द्वीप के समान रक्षक रूप, शरण रूप, गतिरूप एवं आधारभूत हैं, सर्व पदार्थों के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन को अर्थात् केवलज्ञान केवलदर्शन को धारण करने वाले हैं, चार घाती कर्म रूप आवरण से मुक्त है, स्वयं राग-द्वेष को जीतने वाले और दूसरों को जिताने वाले हैं, स्वयं संसार से पार पहुंच चुके और दूसरों को भी पार पहुंचाने वाले हैं, स्वयं ज्ञान को पाए हुए हैं और दूसरों को भी ज्ञान प्राप्त कराने वाले हैं, स्वयं मुक्त हैं और दूसरों को भी मुक्ति प्राप्त कराने वाले हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं तथा कल्याणकारी, उपद्रव रहित, अचल (स्थिर), रोग रहित, अनन्त, अक्षय, बाधा पीड़ा रहित और पुनरागमन (जन्ममरण) रहित ऐसे मोक्ष स्थान को प्राप्त हैं, अथवा प्राप्त होने वाले हैं। ऐसे सब प्रकार के भयों को जीतने वाले जिनेश्वरों को नमस्कार हो।

प्रश्न- णमोत्थु णं को प्रणिपात सूत्र क्यों कहते हैं ?

उत्तर- प्रणिपात का अर्थ नमस्कार होता है। पूर्ण रूप से चरणों में गिरकर नमस्कार करने को प्रणिपात कहते हैं।

प्रश्न- इसे शक्रस्तव का पाठ क्यों कहते हैं ?

उत्तर- क्योंकि पहले देवलोक के इन्द्र, जिनका नाम शक्र है, वे भी इसी णमोत्थु णं से अरिहन्तों व सिद्धों की स्तुति करते हैं।

प्रश्न- लोगस्स और णमोत्थु णं में क्या अन्तर है ?

उत्तर- लोगस्स में प्रमुख रूप से इस अवसर्पिणी काल में हुए तीर्थंकर सिद्धों के सिद्धावस्था भावी गुणों के उल्लेख पूर्वक स्तुति है, जबकि णमोत्थु णं में सभी तीर्थंकर अवस्था

भावी गुणों के उल्लेख पूर्वक तीर्थंकर सिद्धों एवं तीर्थङ्करों की स्तुति है।

प्रश्न- स्तव- स्तुति से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ?

उत्तर- इससे जीव ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप बोधि लाभ को प्राप्त कर अंतक्रिया कर मोक्ष को प्राप्त करता है अथवा आराधक होकर वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है।

प्रश्न- सभी प्रकार की भक्ति में कौन सी भक्ति सर्वश्रेष्ठ है ?

उत्तर- गुण-स्मरण एवं आज्ञा पालन रूप भक्ति सर्वश्रेष्ठ है।

धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ 卐

णमोत्थु णं रामस्स गणिवरस्स• मम धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स।

मूल शब्द		अर्थ
मम	–	मेरे
धम्मायरियस्स	–	धर्माचार्य जी
धम्मोवएसगस्स	–	धर्मोपदेशक
(रामस्स गणिवरस्स)	–	आचार्य प्रवर (श्री रामेश गणिवर) को
णमोत्थु णं	–	नमस्कार हो

भावार्थ – मेरे धर्माचार्यजी एवं धर्मोपदेशक आचार्य प्रवर (श्री रामेश गणिवर) को नमस्कार हो)

सामायिक पारने का पाठ (एयस्स नवमस्स का पाठ)

एयस्स नवमस्स, सामाइय–वयस्स, पंच अइयारा, जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं–मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 831)

卐 रायपसेणियं आदि अनेक आगमों में क्वचित् सिद्धों व अरिहंतों को नमस्कार के पश्चात अपने धर्माचार्य को नमस्कार करने का उल्लेख प्राप्त होता है। दो णमोत्थु णं के पश्चात् श्रावक-श्राविकाओं के द्वारा भी अपने धर्माचार्य की स्तुति करना आगमिक विधि है। अतः सर्वत्र दो णमोत्थु णं के पश्चात् 'धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ' उच्चारणीय होने के कारण इस पाठ का संयोजन किया गया है।

• अपने - अपने धर्म गुरु का नाम लिया जा सकता है।

एयस्स	-	इस
नवमस्स	-	नवें
सामाइयवयस्स	-	सामायिक व्रत के
पंच	-	पाँच
अइयारा	-	अतिचार
जाणियव्वा	-	जानने योग्य है, किन्तु
न समायरियव्वा	-	आचरण करने योग्य नहीं हैं
तं जहा	-	वे इस तरह हैं
ते	-	उनकी
आलोउं	-	आलोचना करता हूँ
मणदुप्पणिहाणे	-	मन में बुरे विचार उत्पन्न करना
वयदुप्पणिहाणे	-	कठोर या पाप जनक वचन बोलना
कायदुप्पणिहाणे	-	काया से पाप प्रवृत्ति करना, जैसे-बिना देखे पूंजे, पृथ्वी आदि पर बैठना
सामाइयस्स सइ अकरणया	-	सामायिक करने का काल विस्मरण करना
सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया	-	सामायिक का समय होने से पहले ही पार लेना या अनवस्थित रूप से सामायिक करना।
तस्स	-	उससे होने वाला
मि	-	मेरा
दुक्कडं	-	पाप (दुष्कृत्य)
मिच्छा	-	मिथ्या (निष्फल) हो।

भावार्थ - श्रावक के बारह व्रतों में से नवाँ व्रत सामायिक व्रत है। इसके पाँच अतिचार हैं, वे जानने योग्य हैं, परन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं। उन अतिचारों की आलोचना करता हूँ, जैसे कि 1. सामायिक के समय मन में बुरे विचार किये हों। 2. कठोर या पाप जनक वचन बोले हों। 3. अयतना पूर्वक शरीर से चलना, फिरना, हाथ, पाँव को फैलाना, संकोचना आदि क्रियाएं की हों। 4.सामायिक करने का काल याद न रखा हो। 5. अल्पकाल तक या अनवस्थित रूप से जैसे-तैसे सामायिक की हो।

इन पाँचों अतिचारों से होने वाला मेरा पाप निष्फल हो।

सामाइयं सम्मं काएणं न फासियं न पालियं न तीरियं न किट्टियं न सोहियं न आराहियं, आणाए अणुपालियं ण भवइ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामाइयं	-	सामायिक का
सम्मं	-	सम्यक्
काएणं	-	काया से
न फासियं	-	स्पर्श न किया हो
न पालियं	-	पालन न किया हो
न सोहियं	-	अतिचारों से रहित उसे शुद्ध न किया हो
न तीरियं	-	पूर्ण न किया हो
न किट्टियं	-	कीर्तन न किया हो
न आराहियं	-	आराधन न किया हो
आणाए	-	आज्ञानुसार
अणु पालियं न भवइ	-	पालन न किया हो
तस्स	-	उससे होने वाला
मि	-	मेरा
दुक्कडं	-	पाप (दुष्कृत्य)
मिच्छा	-	मिथ्या हो।

भावार्थ - सामायिक का सम्यक् प्रकार काया से स्पर्श न किया हो, उसका पालन न किया हो, अतिचार टाल कर उसकी शुद्धि न की हो, उसे पूर्ण न किया हो, कीर्तन न किया हो, आराधना न की हो एवं आज्ञानुसार उसका पालन न किया हो, उससे होने वाला मेरा पाप निष्फल हो।

सामायिक में दस मन के, दस वचन के, बारह काया के, इन कुल बत्तीस दोषों में से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक में स्त्री–कथा (महिलाएँ पुरुष कथा कहे), भत्त कथा (भोजन–कथा), देश–कथा, राज कथा, इन चार कथाओं में से कोई कथा की हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक में आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा इन चार संज्ञाओं में से कोई संज्ञा की हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, जानते–अजानते मन, वचन, काया से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक व्रत विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि में कोई अविधि

हुई हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक का पाठ बोलने में काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्यूनाधिक, विपरीत पढ़ने में आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक लेने की विधि

1. **निस्सही निस्सही –** सामायिक स्थान (धर्म स्थान) में प्रवेश करते ही निस्सही निस्सही शब्द का उच्चारण करे अर्थात् मैं पाप कर्मों का निषेध करता हूँ।
2. **प्रतिलेखन –** स्थान पूँज कर, आसन, मुखवस्त्रिका, वस्त्र आदि धार्मिक उपकरणों का प्रतिलेखन करे एवं आसन बिछाऐ।
3. **वस्त्र परिवर्तन–** भाइयों के लिए चोलपट्टा या धोती एवं चादर (चोलपट्टे की लम्बाई पैर के टखने तक रहे) तथा मुँहपत्ति धारण करे एवं महिलाएं सादे वस्त्र पहने एवं मुँहपत्ति लगावे।
4. **वन्दन–** तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार विधि सहित वन्दना। (सन्त सतियाँजी म.सा. विराजमान हो तो उनकी ओर मुँह करके और न हो तो उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुँह करके वन्दनीय के दाहिने कान से बायें कान की तरफ अर्थात् अपने बायें से दायें कान की ओर तीन बार प्रदक्षिणा करे)
5. **नमस्कार महामन्त्र, इच्छाकारेणं, तस्स उत्तरी का पाठ** (तस्स उत्तरी का पाठ बोलते समय ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं तक का पाठ उच्चारण पूर्वक बोले फिर अप्पाणं वोसिरामि शब्द मन में बोलना)
6. **कायोत्सर्ग–** शरीर की चंचलता रहित होकर एक लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।* 'नमो अरिहंताणं' बोल कर कायोत्सर्ग खोले।

---

* कई लोग सामायिक लेने की प्रक्रिया में ध्यान में 'इच्छाकारेणं' की पाटी बोलते हैं किन्तु वह उपयुक्त नहीं लगता। इसके अनेक कारण हैं यथा - (1) प्रारंभ में 'इच्छाकारेणं' की पाटी बोलकर 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' दे दिया जाता है। इसके पश्चात ध्यान में इच्छाकारेणं का पाठ बोलकर 'तस्स आलोउं' कहना ठीक नहीं है। क्योंकि 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' प्रतिक्रमण रूप बड़ा प्रायश्चित है तथा 'तस्स आलोउं' आलोचना रूप छोटा प्रायश्चित। आलोचना के बाद प्रतिक्रमण का क्रम ही उपयुक्त है, प्रतिक्रमण के बाद आलोचना का नहीं। (2) ध्यान में सामायिक के उद्देश्य का स्मरण होना चाहिए, जो लोगस्स के द्वारा ही हो सकता है, इच्छाकारेणं के द्वारा नहीं। (3) जहाँ-जहाँ ध्यान के तुरन्त बाद खुला लोगस्स बोला जाता है, वहाँ-वहाँ ध्यान में लोगस्स का पाठ होता है जैसे- सामायिक पारने की विधि में, प्रतिक्रमण के चउवीसत्थय में, प्रतिक्रमण के पाँचवें आवश्यक में आदि। सामायिक लेते समय भी ध्यान के बाद खुला लोगस्स बोला जाता है अतः ध्यान में भी लोगस्स होना उपयुक्त है।

ध्यान करने की विधि

खड़े होकर ध्यान की विधि :-

i) दोनों पैरों के अग्रभाग में चार अंगुल एवं पीछे के भाग में उससे कुछ कम अंतर रखते हुए घुटनों को बिना मोड़े सीधे खड़े रहना।

ii) आँखों को बंद करना या थोड़ी सी खुली रखकर नासिकाग्र पर टिकाना।

iii) गर्दन हल्की सी झुकी हुई रखना।

iv) हथेलियों को बिना तनाव के खुली रखते हुए हाथों को नीचे लटकाये रखना।

v) उत्तरीकरण सूत्र बोलते हुए ध्यान की मुद्रा बनाना। 'अप्पाणं वोसिरामि' बोलने से पहले काया को स्थिर कर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

बैठकर ध्यान करने की विधि

सुखासन में बैठकर रीढ़ की हड्डी को सीधी रखकर नाभि के पास बाँयी हथेली पर दाँयी हथेली (Right Palm on the left palm) रखकर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

नोट :- पुरुषों को खड़े होकर ही ध्यान करना चाहिए। शारीरिक अनुकूलता न होने आदि कारणों से जो खड़े-खड़े ध्यान न कर सकें तो वे बैठ कर भी कर सकते हैं। बहनों को बैठकर ही ध्यान करना चाहिए।

7. **नमस्कार मंत्र,** कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ एवं एक लोगस्स का पाठ बोले।
8. **प्रत्याख्यान –** करेमि भन्ते के पाठ से सामायिक व्रत के प्रत्याख्यान। (साधु-साध्वी या बड़े श्रावक-श्राविका जो सामायिक में हैं, उनसे ग्रहण करे। न हो तो स्वयं लेवे।) यहाँ ध्यान रखने योग्य है कि यदि साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका विशेष ज्ञानार्जन-प्रवचन आदि में संलग्न हों तो उन्हें अन्तराय न देते हुए स्वयं प्रत्याख्यान ले लेवे। करेमि भन्ते के पाठ में जहां 'जावनियमं' शब्द आवे उसके स्थान पर जितनी सामायिक लेना हो उतने मुहूर्त उपरान्त बोल कर आगे का पाठ पूर्ण करे।
9. **णमोत्थु णं (शक्रस्तव) देने की विधि-** आसन से नीचे बैठकर बायाँ घुटना

ऊँचा कर दोनों कुहनियों को पेट पर लगाकर हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर मस्तक पर दोनों हाथों को रखना चाहिए। विराम स्थल का ध्यान रखते हुए भाव सहित शक्रस्तव का उच्चारण करना चाहिए। दो बार णमोत्थु णं का पाठ बोले। पहले णमोत्थु णं के अन्त में 'ठाणं संपत्ताणं' एवं दूसरी बार णमोत्थु णं में 'ठाणं संपाविउकामाणं' कहना। दो णमोत्थु णं के बाद अपने धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ कहे।

नोट - एक सामायिक का समय 48 मिनट (1 मुहूर्त) का होता है।

सामायिक पारने की विधि

1. नमस्कार महामन्त्र। इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ बोलकर,
2. दो लोगस्स का ध्यान करे, णमो अरिहंताणं कहकर पारना।
3. नमस्कार महामन्त्र, कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ बोलकर एक लोगस्स का पाठ बोलना।
4. दो बार णमोत्थु णं व धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ पूर्व विधि के अनुसार। सामायिक पारने का पाठ एयस्स नवमस्स बोले एवं तीन बार नमस्कार मन्त्र बोलकर सामायिक पारना।

प्रश्न- सामायिक कहाँ करनी चाहिए ?

उत्तर- **1.** जहाँ तक हो सके सन्त/सतियांजी म.सा. विराजते हों, वहाँ **2.** जहाँ श्रावक आदि धर्म-क्रिया करते हों **3.** अपने घर में सामायिक करनी हो तो एकांत स्थान में सामायिक करें।

प्रश्न- सामायिक करने से क्या लाभ हैं ?

उत्तर- **1.** समभाव की प्राप्ति होती है। **2.** अठारह पाप छूटते हैं। **3.** दो घड़ी साधु जैसा जीवन बीतता है। **4.** जीवों की दया और रक्षा की भावना बढ़ती है और दृढ़ बनती है। **5.** सामायिक करने से जिनवाणी सुनने, पढ़ने और समझने का अवसर मिलता है।

प्रश्न- सामायिक का वेश तथा उपकरण कैसे होना चाहिए ?

उत्तर- निरवद्य स्थान को देखकर या पूँज कर सादा आसन बिछावे। सांसारिक वेश कुर्ता, टोपी, पगड़ी, पेन्ट, पायजामा, बनियान, स्वेटर, हाथ-पैर के मोजे, रंगीन लुंगी

तथा राग उत्पन्न होने वाले वस्त्र- आभूषण न पहनकर सादे वस्त्र पहनना चाहिए। भाईयों को खुले लाँग वाली धोती या सफेद-चोलपट्टा पहनकर सफेद दुपट्टा ओढ़ना चाहिए। मुख-वस्त्रिका का प्रतिलेखन कर उसे धारण करें। धार्मिक पुस्तकें, माला, पूंजनी आदि रखें।

(सामायिक में सेल की घड़ी देखने एवं मोबाईल आदि इलैक्ट-ानिक उपकरण का प्रयोग एवम् स्पर्श सर्वथा निषेध है।)

प्रश्न- दुष्प्रणिधान किसे कहते हैं ?

उत्तर- मन, वचन या काया के योग को अशुभ प्रवृत्ति में लगाना तथा उसमें एकाग्र बनाना दुष्प्रणिधान है।

प्रश्न- व्रत दूषित होने के कौन-कौन से कारण होते हैं ?

उत्तर- व्रत दूषित होने के चार कारण होते हैं-

1. व्रत भंग करने का संकल्प (विचार) **अतिक्रम** है।
2. व्रत भंग करने के लिए कायिक व्यापार प्रारंभ करना **व्यतिक्रम** है।
3. व्रत भंग करने के लिए साधनों को जुटाना तथा व्रत भंग के लिए तत्पर होना **अतिचार** है।
4. व्रत को सर्वथा भंग करना **अनाचार** है।

(3) प्रश्न-उत्तर

प्रश्न 1. जैन कौन है ?

उत्तर जो जिन अर्थात् वीतराग देव की वाणी में श्रद्धा रखता है और उसका पालन करता है, वह जैन है। जैन वह है, जो मन के विकारों (क्रोध, मान, माया और लोभ) को जीतने की कोशिश करता है और सदा भले काम करता है।

प्रश्न 2. भले काम कौन-कौन से हैं ?

उत्तर- 1. किसी को दुःख न देना। 2. सबके दुःख दूर करने का प्रयत्न करना। 3. सदा सच बोलना। 4. चोरी न करना। 5. गाली न देना। 6. दुःख में घबराना नहीं।

7. धन सम्पत्ति का अभिमान नहीं करना। 8. सबके साथ अच्छा बर्ताव करना।

प्रश्न 3. जैन को क्या करना चाहिए ?

उत्तर- 1. सुबह उठते ही नवकार मंत्र का जाप करना। 2. प्रतिदिन सामायिक करना। 3. माता-पिता तथा अपने से बड़ों का आदर करना एवं प्रणाम करना। 4. आपस में जय जिनेन्द्र कहना। 5. देव, गुरु, धर्म की भक्ति करना। 6. भूखों को भोजन कराना। 7. रोगी की सेवा करना। 8. रात्रि भोजन का त्याग करना। 9. सदाचार का पालन करना। 10. धार्मिक पुस्तकें पढ़ना आदि।

प्रश्न 4. जैन कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर- तीन प्रकार के होते हैं- 1. श्रद्धा रखने वाले, 2. श्रद्धा के साथ थोड़ा चारित्र (अणुव्रतादि) पालने वाले, 3. श्रद्धा के साथ पूरा चारित्र (पाँचों महाव्रत) पालने वाले।

प्रश्न 5. धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर जो दुर्गति में पड़ते हुए जीवों को बचाये तथा सुगति में ले जावे, उसे धर्म कहते हैं। जो धारण करने योग्य है वह धर्म कहलाता है।

प्रश्न 6. धर्म क्या है ?

उत्तर 1. सम्यग् ज्ञान 2. सम्यग् दर्शन 3. सम्यग् चारित्र तथा 4. सम्यग् तप रूप धर्म है।

सम्यग् ज्ञान - लोकगत वस्तुओं व स्वरूप की सही जानकारी करना ज्ञान कहलाता है।

सम्यग् दर्शन - अरिहन्त द्वारा बताये हुए तत्वों पर श्रद्धा रखना।

सम्यग् चारित्र - महाव्रत या अणुव्रतादि का पालन करना।

सम्यग् तप - उपवास आदि करके काया आदि को तपाना तथा प्रायश्चित करके मन को तपाना।

प्रश्न 7 हमारे देव कौन हैं ?

उत्तर अरिहन्त और सिद्ध भगवान हमारे देव हैं।

प्रश्न 8 हमारे गुरु कौन हैं ?

उत्तर आचार्यजी महाराज, उपाध्यायजी महाराज और पंच महाव्रतधारी पांच समिति तीन गुप्ति का पालन करने वाले जैन साधु-साध्वी हमारे गुरु हैं।

प्रश्न 9 जैन धर्म से इस लोक और परलोक में क्या लाभ होते हैं ?

उत्तर जैन धर्म से निम्न लाभ होते हैं-

इस लोक में	परलोक में
1. ज्ञान से बुद्धि विकसित होती है।	ज्ञान से समझने की, स्मरण की, तर्क शक्ति मिलती है।
2. श्रद्धा से असत्य का चक्र नहीं चलता।	श्रद्धा से देव तथा मनुष्य गति मिलती है। आर्य क्षेत्र, अच्छा कुल मिलता है।
3. अहिंसा से वैर-विरोध शांत हो मैत्री बढ़ती है, समय पर रक्षक मिलते हैं।	अहिंसा से निरोगी काया और दीर्घ आयुष्य मिलता है।
4. सत्य से विश्वसनीयता और प्रामाणिकता बढ़ती है।	सत्य से मधुर कंठ और प्रिय वाणी मिलती है।
5. अचौर्य से सब स्थानों में प्रवेश मिल जाता है।	अचौर्य से चोर का वश नहीं चलता।
6. ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ एवं बलवान रहता है।	ब्रह्मचर्य से पाँचों इन्द्रियां मिलती हैं।
7. अपरिग्रह से तन-मन को अधिक विश्राम मिलता है।	अपरिग्रह से धनवान कुल में जन्म होता है।
8. तप से रोग नष्ट होते हैं, शरीर निरोग रहता है।	तप से किसी प्रकार का दुःख या शोक नहीं रहता है।

प्रश्न 10. जैन-धर्म से तात्कालिक लाभ क्या है ?

उत्तर- 1. संसार के स्वरूप का सम्यग् बोध होता है।
2. आत्मा कुव्यसनों से दूर हटती है।
3. कषायों के मन्द होने से आत्मा में शांति आती है तथा बाह्य सम्बन्धों में भी मधुरता आती है।

-----●-----

पच्चीस बोल का थोकड़ा (11 बोल तक)

पहले बोले गति 4

नरक गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति और देव गति।

प्र. गति किसे कहते हैं?

उ. संसारी जीव मरकर जहाँ जाते हैं उसको **गति** कहते हैं।

प्र. नरक गति किसे कहते हैं?

उ. नरक गति नामकर्म के उदय से प्राप्त जीवों की गति को **नरक गति** कहते हैं। जो जीव अत्यन्त पाप कर्म करते हैं, वे मरकर प्रायः नरक में जाते हैं उन्हें वहाँ घोर कष्टों का सामना करना पड़ता है।

प्र. तिर्यञ्च गति किसे कहते हैं?

उ. तिर्यञ्च गति नामकर्म के उदय से प्राप्त जीवों की गति को **तिर्यञ्च गति** कहते हैं। जो जीव झूठ बोलते हैं, छल-कपट करते हैं या व्यापार में धोखा देते हैं वे मरकर प्रायः तिर्यञ्च की योनि में जाते हैं।

प्र. मनुष्य गति किसे कहते हैं?

उ. मनुष्य गति नामकर्म के उदय से प्राप्त जीवों की गति को **मनुष्य गति** कहते हैं। जो जीव स्वभाव से भद्र, विनयवान और दयालु होते हैं, वे मरकर प्रायः मनुष्य होते हैं।

प्र. देव गति किसे कहते हैं?

उ. देव गति नामकर्म के उदय से प्राप्त जीवों की गति को **देव गति** कहते हैं। जो जीव शुभकर्म करते हैं, सराग संयमादि पालते हैं वे मरकर प्रायः देव होते हैं।

दूसरे बोले जाति 5

एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

प्र. जाति किसे कहते हैं?

उ. समान इन्द्रिय वाले जीवों के समूह तथा जाति नामकर्म के उदय से प्राप्त हुई जीव की एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि रूप पर्याय (अवस्था) को **जाति** कहते हैं।

- **एकेन्द्रिय** :- जिन जीवों के सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय (शरीर) ही हो, जैसे-मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव।
- **बेइन्द्रिय** :- जिन जीवों के स्पर्श, रसना (जिह्वा) ये दो इन्द्रियाँ हों, जैसे-शंख, सीप, जोंक, अलसिया (वर्षा के समय उत्पन्न जीव) आदि।
- **तेइन्द्रिय** :- जिन जीवों के स्पर्श, रसना, घ्राण (नासिका) ये तीन इन्द्रियाँ हों, जैसे-जूं, लीख, चींटी, कुंथवा, खटमल आदि।
- **चउरिन्द्रिय** :- जिन जीवों के स्पर्श, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियाँ हों, जैसे-मक्खी, मच्छर, भ्रमर, पतंग, बिच्छु आदि।
- **पंचेन्द्रिय** :- जिन जीवों के स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु एवं श्रोत (कर्ण) ये पाँचों इन्द्रियाँ हों, जैसे-नैरयिक, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि।

तीसरे बोले काया 6

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय।

प्र. काया किसे कहते हैं?

उ. काया का अर्थ है-एकत्र होना। जिस शरीर के रूप में पुद्गल एकत्र होते हैं उसे **काया** कहा जाता है। वह शरीर जिन जीवों का है उन्हें भी यहाँ उपचार से काया कहा है।

- **पृथ्वीकाय** :- पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-मिट्टी, हिंगलु, हड़ताल, पत्थर, नमक, धातु, हीरा, पन्ना आदि ।
- **अप्काय** :- पानी ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-ओस, धुँअर, कुँआ, बावड़ी, वर्षा, समुद्र आदि का पानी।
- **तेउकाय** :- अग्नि ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-झाल की अग्नि, सौर ऊर्जा, आकाश की बिजली, प्रयोग में आने वाली बिजली।
- **वायुकाय** :- हवा ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-उक्कलिया वायु, मंडलिया वायु, घनवायु, तनवायु, पूर्वादि दिशाओं की वायु।
- **वनस्पतिकाय** :- वनस्पति ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-वृक्ष, लता, फल, फूल, सब्जी, गेहूँ, धान आदि।

  बादर वनस्पति के दो भेद-**प्रत्येक** और **साधारण**।

  एक शरीर में एक जीव हो उसे 'प्रत्येक' कहते हैं। जैसे-आम, अंगूर, मोठ, बड़, पीपल, गेहूँ, धान आदि ।

जिन जीवों के आहार, आयु, श्वासोच्छ्वास और शरीर ये साधारण हों (सबके द्वारा एक साथ धारण किये जाते हों) उसको साधारण वनस्पति कहते हैं। जैसे-जमीकंद, काई, उगता हुआ अंकुर आदि।

- **त्रसकाय :-** जो जीव सर्दी, गर्मी आदि से बचने के लिए चल-फिर सकते हैं, उन्हें त्रसकाय कहते हैं। जैसे-बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

चौथे बोले इन्द्रियाँ 5

श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय।

प्र. इन्द्रिय किसे कहते हैं?

उ. इन्द्र का अर्थ है 'आत्मा'। जिसके माध्यम से छद्मस्थ आत्मा शब्द, रूप, रस, गंध व स्पर्श का ज्ञान करती है उसे **इन्द्रिय** कहते हैं।

पाँचवें बोले पर्याप्ति 6

आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मनः पर्याप्ति।

प्र. पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. पर्याप्ति=शक्ति सामर्थ्य।

आहारादि के पुद्गलों को ग्रहण करने तथा रस, शरीरादि रूप में परिणमाणे की आत्मशक्ति विशेष को **पर्याप्ति** कहते हैं।

प्र. आहार पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. बाह्य आहार के पुद्गलों को ग्रहण करके खल भाग व रस भाग में विभक्त करने की शक्ति को **'आहार पर्याप्ति'** कहते हैं।

प्र. शरीर पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. गृहित आहार को सात धातुओं* के रूप में परिणत करने की शक्ति को **'शरीर पर्याप्ति'** कहते हैं।

प्र. इन्द्रिय पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. धातुओं के रूप में परिणत आहार को स्पर्शन आदि इन्द्रिय रूप में परिणमाने की शक्ति को **'इन्द्रिय पर्याप्ति'** कहते हैं।

* सात धातु- रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य।

प्र. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके श्वासोच्छ्वास रूप में परिणमाने की शक्ति को **'श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति'** कहते हैं।

प्र. भाषा पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके भाषा रूप परिणमाने की शक्ति को **'भाषा पर्याप्ति'** कहते हैं।

प्र. मनः पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. मन योग्य मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके मन रूप परिणमाने की शक्ति को **'मनः पर्याप्ति'** कहते हैं।

छठे बोले प्राण 10

1. **श्रोत्रेन्द्रिय बलप्राण,** 2. **चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण,** 3. **घ्राणेन्द्रिय बलप्राण,** 4. **रसनेन्द्रिय बलप्राण,** 5. **स्पर्शेन्द्रिय बलप्राण** 6. **मनोबलप्राण,** 7. **वचन बलप्राण,** 8. **कायबलप्राण,** 9. **श्वासोच्छ्वास बलप्राण,** 10. **आयुष्य बलप्राण।**

प्र. प्राण किसे कहते हैं?

उ. जीवित रहने एवं इन्द्रियादि की प्रवृत्ति करने में कारणभूत शक्ति विशेष को **प्राण** कहते हैं।

सातवें बोले शरीर 5

औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण।

प्र. शरीर किसे कहते हैं?

उ. जो प्रतिसमय जीर्ण-शीर्ण होता रहता है उसे **'शरीर'** कहते हैं।

प्र. औदारिक शरीर किसे कहते हैं?

उ. उदार अर्थात् स्थूल पुद्गलों से बने हुए शरीर को **'औदारिक शरीर'** कहते हैं।

प्र. वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं?

उ. जिस शरीर से विविध अथवा विशिष्ट क्रियाएँ (छोटा-बड़ा, एक-अनेक, दृश्य-अदृश्य आदि रूप) होती हैं एवं वैक्रिय पुद्गलों से बना होता है, उसे **'वैक्रिय शरीर'** कहते हैं।

प्र. आहारक शरीर किसे कहते हैं?

उ. आहारक पुद्गलों से बना हुआ शरीर **'आहारक शरीर'** कहलाता है।

प्र. आहारक शरीर कौन, कब और कैसा बनाते हैं?

उ. चौदह पूर्वधारी आहारक लब्धि सम्पन्न मुनिराज प्राणी दया, तीर्थंकरों की ऋद्धि दर्शन, सूक्ष्म पदार्थों को समझने एवं संशय निवारण इन चार कारणों से अति विशुद्ध स्फटिक रत्न के समान निर्मल आहारक पुद्गलों का शरीर बनाते हैं। इसकी अवगाहना जघन्य देशोन एक हाथ उत्कृष्ट परिपूर्ण एक हाथ की होती है।

प्र. तैजस शरीर किसे कहते हैं?

उ. तैजस पुद्गलों से बना शरीर **'तैजस शरीर'** कहलाता है। यह उष्मारूप और आहार को पचाकर उसे रसादि में परिणत करने में सहायक है व तेजोलब्धि का हेतु है।

प्र. कार्मण शरीर किसे कहते हैं?

उ. कार्मण वर्गणा के पुद्गलों से बने हुए शरीर को **'कार्मण शरीर'** कहते हैं। जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए कर्म पुद्गल कार्मण शरीर है। तैजस व कार्मण ये दो शरीर सभी संसारी जीवों में होते हैं।

आठवें बोले योग 15

मनोयोग के 4- 1. सत्य मनोयोग 2. मृषा मनोयोग 3. सत्यमृषा मनोयोग 4. असत्यमृषा* मनोयोग।

वचनयोग के 4- 1. सत्य वचनयोग, 2. असत्य वचनयोग, 3. सत्यमृषा वचनयोग, 4. असत्यमृषा वचनयोग।

काययोग के 7- 1. औदारिक काययोग, 2. औदारिक मिश्र काययोग, 3. वैक्रिय काययोग, 4. वैक्रिय मिश्र काययोग, 5. आहारक काययोग, 6. आहारक मिश्र काययोग, 7. कार्मण काययोग।

प्र. योग किसे कहते हैं?

उ. मन, वचन, काया की शुभाशुभ प्रवृत्ति को **योग** कहते हैं।

* आगमों में 'सत्य, मृषा, सत्यमृषा और असत्यमृषा' के रूप में ही मनोयोग व वचनयोग के भेदों का नामकरण किया है। अत: 'मिश्र' एवं 'व्यवहार' के स्थान पर 'सत्यमृषा' एवं 'असत्यमृषा' का प्रयोग उचित है।

नौंवें बोले उपयोग 12

पाँच ज्ञान-आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान*, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान।

तीन अज्ञान - मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान।

चार दर्शन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

प्र. उपयोग किसे कहते हैं?

उ. आत्मा की बोध रूप प्रवृत्ति को **उपयोग** कहते हैं। सत्ता रूप सामान्य का बोध दर्शन-उपयोग है तथा सत्ता के अतिरिक्त सबका बोध ज्ञान-उपयोग है।

दसवें बोले कर्म 8

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र, अंतराय।

प्र. कर्म किसे कहते हैं?

उ. मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से जिन कार्मण वर्गणा रूप पुद्गलों का आत्मा के साथ बंध होता है उसे **कर्म** कहते हैं।

1. **ज्ञानावरणीय कर्म**- जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को ढाँकता है।
2. **दर्शनावरणीय कर्म**- जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण को ढाँकता है।
3. **वेदनीय कर्म**- जिस कर्म के फल से सुख-दु:ख भोगा जाता है।
4. **मोहनीय कर्म**- जिस कर्म से आत्मा धर्म से विमुख हो, पाप में प्रवृत्त हो, क्रोध, मान, माया और लोभ में समय व्यतीत करे, जिससे आत्मा मोहित (सत्-असत् के ज्ञान से शून्य) हो जाए।
5. **आयुष्यकर्म**- जिस कर्म के उदय से जीव चार गतियों में रुका रहे।
6. **नामकर्म**- जिस कर्म के उदय से आत्मा गति आदि नाना पर्यायों का अनुभव करे।
7. **गोत्र कर्म**- जिस कर्म के उदय से जीव उच्च-नीच जाति आदि को प्राप्त

* यद्यपि मतिज्ञान एवं आभिनिबोधिक ज्ञान में कोई अंतर नहीं है तथापि शास्त्रकारों द्वारा मतिज्ञान के प्रसंग पर अधिकांशत: 'आभिनिबोधिक ज्ञान' इस प्रकार का प्रयोग किये जाने से यहाँ भी 'आभिनिबोधिक ज्ञान' को ही प्रधानता दी है। 'मति' शब्द का प्रयोग ज्ञान एवं अज्ञान दोनों के लिए हो सकता है किंतु 'आभिनिबोधिक ज्ञान' शब्द का प्रयोग मात्र ज्ञान के लिए ही होता है।

करके उच्च-नीच कहलाए।

8. **अंतराय कर्म**- जिस कर्म से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (शक्ति-सामर्थ्य) में विघ्न उपस्थित हो जाते हैं।

ग्यारहवें बोले गुणस्थान 14

1. मिथ्यादृष्टि* गुणस्थान 2. सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान 3. सम्यग्-मिथ्या❖ (मिश्र) दृष्टि गुणस्थान 4. अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान 5. देशविरत गुणस्थान 6. प्रमादी साधु गुणस्थान 7. अप्रमादी साधु गुणस्थान 8. निवृत्ति बादर गुणस्थान 9. अनिवृत्ति बादर गुणस्थान 10. सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान 11. उपशांत मोहनीय गुणस्थान 12. क्षीण मोहनीय गुणस्थान 13. सयोगि-केवलि गुणस्थान 14. अयोगि-केवलि✪ गुणस्थान

प्र. जीवों की क्रमशः उन्नत अवस्थाओं को जैन शास्त्रों में क्या कहते हैं?

उ. गुणस्थान (जीवस्थान)।

प्र. गुणस्थान की परिभाषा क्या है?

उ. संसारी आत्मा के ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुणों की शुद्धि-अशुद्धि और उत्कर्ष-अप्कर्ष की अवस्था विशेष को **'गुणस्थान'** कहते हैं।

-----●-----

* मिथ्यात्व आदि शब्दों के स्थान पर थोकड़े में श्रीमत् समवायांग सूत्र के अनुसार मिथ्यादृष्टि आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। विशेष स्पष्टीकरण 'गुणस्थान स्वरुप' के नाम द्वार की टिप्पण में देखें।

❖ श्रीमत् समवायांग सूत्र के अनुसार 'सम्यग् मिथ्या' शब्द का प्रयोग उपयुक्त है। अतः इसे प्रधानता दी है।

✪ समास युक्त पद होने से 'गि' व 'लि' में ह्रस्व इकार का प्रयोग समुचित है।

(2) बीस विहरमान (तीर्थंकर)

1. श्री सीमंधर स्वामीजी
2. श्री युगमंधर स्वामीजी
3. श्री बाहु स्वामीजी
4. श्री सुबाहु स्वामीजी
5. श्री सुजात स्वामीजी
6. श्री स्वयंप्रभ स्वामीजी
7. श्री ऋषभानन स्वामीजी
8. श्री अनंतवीर्य स्वामीजी
9. श्री सूरप्रभ स्वामीजी
10. श्री विशालधर स्वामीजी
11. श्री वज्रधर स्वामीजी
12. श्री चन्द्रानन स्वामीजी
13. श्री चन्द्रबाहु स्वामीजी
14. श्री भुजंग स्वामीजी
15. श्री ईश्वर स्वामीजी
16. श्री नेमप्रभ स्वामीजी
17. श्री वीरसेन स्वामीजी
18. श्री महाभद्र स्वामीजी
19. श्री देवयश स्वामीजी
20. श्री अजितवीर्य स्वामीजी

ये बीस तीर्थंकर अभी महाविदेह क्षेत्र में विचर रहे हैं इसलिए इनको 'विहरमान' कहते हैं।

(3) भगवान महावीर के ग्यारह गणधर

1. श्री इन्द्रभूतिजी
2. श्री अग्निभूतिजी
3. श्री वायुभूतिजी
4. श्री व्यक्तस्वामीजी
5. श्री सुधर्मास्वामीजी
6. श्री मण्डितपुत्रजी
7. श्री मौर्यपुत्रजी
8. श्री अकम्पितजी
9. श्री अचलभ्राताजी
10. श्री मेतार्यजी
11. श्री प्रभासजी।

(4) अनमोल शिक्षा

1. दीजे दान
2. लीजे यश
3. कीजे परोपकार
4. खाइजे गम
5. पीजे प्रेम-रस
6. पालजे शील
7. टालजे कुसंगत
8. छोड़जे पाप

9. आदरजे धर्म
10. ध्याइजे अरिहन्त देव
11. सेवजे निर्ग्रन्थ गुरु
12. रमजे स्वाध्याय ध्यान में।

(5) श्रृंगार के 12 बोल

1. शरीर का श्रृंगार **शील**
2. शील का श्रृंगार **तप**
3. तप का श्रृंगार **क्षमा**
4. क्षमा का श्रृंगार **ज्ञान**
5. ज्ञान का श्रृंगार **मौन**
6. मौन का श्रृंगार **शुभ ध्यान**
7. शुभ ध्यान का श्रृंगार **संवर**
8. संवर का श्रृंगार **निर्जरा**
9. निर्जरा का श्रृंगार **केवल ज्ञान**
10. केवल ज्ञान का श्रृंगार **अक्रिया**
11. अक्रिया का श्रृंगार **मोक्ष**
12. मोक्ष का श्रृंगार **अव्याबाध सुख।**

(6) महापापी के 12 बोल

1.	आत्म घाती	महापापी
2.	विश्वास घाती	महापापी
3.	गुरु द्रोही	महापापी
4.	कृतघ्नी	महापापी
5.	झूठी सलाह देने वाला	महापापी
6.	झूठी साक्षी देने वाला	महापापी
7.	हिंसा में धर्म बताने वाला	महापापी
8.	सरोवर की पाल तोड़ने वाला	महापापी
9.	जंगल में आग लगाने वाला	महापापी
10.	हरा-भरा वन कटाने वाला	महापापी
11.	बाल हत्या करने वाला	महापापी
12.	सती-साध्वी का शील भंग करने वाला	महापापी

कथा विभाग

(1) महासती चन्दनबाला

परिचय – चम्पानगरी में महाराजा 'दधिवाहन' राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम 'धारिणी' एवम् पुत्री का नाम 'वसुमति' था। उनकी पुत्री गुण, रूप, शील तथा सुलक्षणों से सम्पन्न होने के साथ राजा-रानी की अतिप्रिय कन्या थी। वह सचमुच दिव्य गुणों की मूर्ति थी।

चम्पानगरी पर आक्रमण – कौशाम्बी नगरी में राजा शतानीक राज्य करता था। उसकी महारानी का नाम मृगावती था। दधिवाहन राजा शतानीक के सगे साढू थे। दोनों की रानियाँ आपस में बहनें थीं। फिर भी शतानीक ने एक समय अचानक चम्पानगरी पर आक्रमण कर दिया। दधिवाहन को जैसे ही आक्रमण का पता चला वह स्तब्ध रह गया तथा सामना नहीं कर सकने के कारण युद्ध में उनकी हार हुई। पराजित दधिवाहन ने जंगल में शरण ली।

धारिणी-वसुमति का वनगमन – महारानी धारिणी और वसुमति ने देखा, कि महाराज वन में चले गये हैं और नगरी तेजी से लूटी जा रही है, उस समय धारिणी ने चन्दनबाला के स्वप्न का उल्लेख करते हुए कहा कि तुमने जो पिछली रात्रि को स्वप्न देखा कि - ''चंपानगरी पर एकदम आपत्तियों की बिजलियाँ गिर रही हैं, पिताजी हम सबको अनाथ- असहाय छोड़कर चले गये हैं। पूरी नगरी दुःख सागर में डूब रही है ....!'' वही स्वप्न सामने उपस्थित हो गया है। इस प्रकार का चिंतन कर रही थी कि एक सारथी उनके रूप पर आसक्त होकर रानी धारिणी एवम् राजकुमारी वसुमति का धोखे से अपहरण कर रथ में बिठा कर जंगल की ओर चल पड़ा।

धारिणी की वसुमति को शिक्षा – मार्ग में धारिणी ने धैर्यपूर्वक अपनी पुत्री को शिक्षा देते हुए कहा- धैर्य धारण करो, प्रभु- स्मरण करो ! पता नहीं हमारे साथ कब क्या हो जाय? भाग्य कहाँ ले जाये ? पर दुःख में हिम्मत मत हारना और अपने धर्म पर सदा दृढ़ रहना। वीर-बाला अपनी रक्षा स्वयं करती है।

धारिणी का बलिदान – वन के मध्य पहुँचने पर एकान्त स्थान देख सारथी ने अपनी मलिन भावना धारिणी के सामने रखी। धारिणी ने नमस्कार मन्त्र की शरण लेकर सारथी को

निर्भीकता से उत्तर दिया कि चाहे हमारे प्राण भी चले जायें किन्तु हम अपने शीलव्रत से किंचित भी नहीं डिगेंगी। इस उत्तर का सारथी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह अपनी मलिन भावना को लिये जैसे ही आगे बढ़ा कि धारिणी ने वसुमति को सदाचार पालन में दृढ़ रहने की अन्तिम शिक्षा देते हुए शील रक्षा के लिए संथारापूर्वक अपनी जबान खींचकर अपने प्राणों का बलिदान कर दिया।

वसुमति चन्दनबाला की बाजार में बिक्री – ऐसा दृश्य देखकर चन्दन बाला अपनी माता का अनुसरण करने की तैयारी करने लगी। यह सब देखकर सारथी स्तब्ध रह गया और उसका हृदय परिवर्तित हो गया। उसने कहा- राजकुमारी! तुम डरो मत, मैं तुम्हें अपनी पुत्री मानता हूँ, प्रसन्नता पूर्वक मेरे घर चलो। इस प्रकार आश्वस्त कर सारथी वसुमति को लेकर कौशाम्बी पहुँचा।

उन्हें देखकर सारथी- पत्नी क्रोधित हुई और कहा कि- मैं तो समझती थी कि चम्पापुरी से स्वर्ण, मणि, हीरे-मोती आदि लूटकर लाओगे, परन्तु आये भी तो ऐसा माल लेकर आये जो मेरे घर को ही लूट ले। जब तक आप इसे बेच कर 20 लाख मोहरें लाकर नहीं देंगे तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगी।

सारथी ने अपनी पत्नी को बहुत समझाया परन्तु वह टस से मस नहीं हुई। यह देखकर वसुमति सारथी को लेकर बाजार में आकर खड़ी हो गई।

जो कोई भी बाजार से निकलता वसुमति का शील-सौन्दर्य देखकर मोहित होकर बोली लगाता किन्तु 20 लाख मोहरें दाम सुनकर लौट जाता। तब कौशाम्बी की प्रसिद्ध गणिका वसुमति की सुन्दरता को देखकर उसे खरीदने को तत्पर हुई।

वेश्या की तड़क-भड़क देखकर उसका हृदय घबरा गया और उसके साथ जाने के लिए इंकार करने लगी। तब वेश्या ने जबरदस्ती हाथ पकड़कर उसे अपनी तरफ खींचा तो वृक्ष पर बैठे हुए बंदरों ने उस पर हमला बोल दिया। वसुमति से उसकी लहु-लुहान हालत देखी नहीं गई। उसने दौड़कर बंदरों को भगाया और वेश्या की रक्षा की तथा उसे दुष्कर्म छोड़ने की प्रेरणा दी। वेश्या ने दृढ़ संकल्प करके चन्दना के चरणों को छुआ और जीवन भर के लिए दुष्कर्म का त्याग कर दिया।

उसी समय कौशाम्बी के कौट्याधिपति धनावह सेठ उधर से निकले। उनकी सरल, पारखी नजरों ने चन्दना को देखा तो उसकी आँखें सजल हो गई। यह तो दासी नहीं राजपुत्री या सेठ की कन्या दिखाई देती है। कहीं कोई हीन कुल वाला इसे खरीद न ले, इसके कुल-शील पर कोई आपदा न आवे, इन पवित्र भावों से उसे खरीद लिया।

धनावह सेठ के घर में – धनावह सेठ उसे लेकर अपने घर पहुँचे। उनकी पत्नी का नाम मूला था। मूला से कहा- 'लो प्रिये! यह गुणवती कन्या। हमारे कोई संतान नहीं है, इससे अब हम अपनी सन्तान की भावना पूरी करें। मूला ने भी वसुमति को पुत्री के रूप में स्वीकार कर लिया। वसुमति सभी दुःखों को भूलकर उन्हें माता-पिता मानकर सेवा करने लगी।

नया नाम चन्दना – धनावह सेठ ने वसुमती से पूछा, बेटी तुम्हारा नाम क्या है? पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया, जब उसने अपना पुराना नाम-परिचय नहीं बताया तो उसके शील व स्वभाव की शीतलता, सौम्यता, विनय तथा चन्दन के समान अनेक गुण वाली देखकर धनावह सेठ उसे प्यार से 'चन्दना' कहकर पुकारने लगे। यही नाम आगे चलकर चन्दन बाला नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सेवा और कृतज्ञता – एक दिन मध्याह्न के समय धनावह सेठ बाहर से आये। उन्होंने दासी से हाथ-पैर धोने के लिए पानी लाने को कहा। दासी किसी कार्य में व्यस्त थी। चन्दना ने पिताजी की वाणी सुनी तो स्वयं जल लेकर दौड़ आई। सेठ बहुत थका हुआ था तथा धूप से क्लान्त लग रहा था। पितृभक्ति-वश चन्दना ने स्वयं ही जल लेकर पिताजी के पैर धोने लगी, उसके लम्बे सघन केश खुले थे, नीचे झुकने पर भूमि पर लग गये। तब धनावह ने सहजभाव से चन्दना की खुली केश राशि को अपने हाथों में पकड़कर उन्हें बाँध दिया।

मूला सेठानी यह सब देख रही थी, उसका पापी हृदय कल्पना में डूब गया। चन्दना की सहज भक्ति और धनावह का शुद्ध स्नेहपूर्ण व्यवहार उसके हृदय में फैली दुर्भावना और आशंका की घास में आग की तरह फैल गया।

कष्ट के तीन दिन तलघर में – मूला ने अवसर पाकर चन्दना के हाथ पैर बेड़ियों से जकड़ दिये। उसके भ्रमर से काले केश को उस्तरे से मुंडा कर, तन पर पुराने वस्त्र लपेट कर भोंयरे (तलघर) में डाल दिया और ताला लगा दिया। घर के सब दास-दासियों से कह दिया कि कोई भी सेठ को यह न बतावे, यदि कोई बताएगा तो कठोर दण्ड दिया जाएगा। इतना सब करके मूला अपने पीहर चली गई। सेठ धनावह कौशाम्बी के बाहर गया हुआ था।

चन्दना को भूमिगृह में पड़े पड़े तीन दिन बीत गये। चौथे दिन धनावह बाहर से नगर में आया, घर सूना देखा, चन्दना भी दिखाई न दी। इधर-उधर जाकर सेठ ने पुकारा- चन्दना! चन्दना ! किन्तु चन्दना न मिली । तब सेठ ने दास-दासियों को बुलाकर रोष पूर्वक कहा यदि कोई जानते हुए भी चन्दना की स्थिति नहीं बतायेगा तो कठोर दण्ड दिया जाएगा।

यह सुनकर बूढ़ी दासी ने सोचा संकट दोनों तरफ है। सेठानी रुष्ट होकर मेरा क्या

बिगाड़ लेगी, मैं तो वैसे ही बूढ़ी हो चुकी हूँ। मेरी मृत्यु से भी चन्दना बच जाय तो उस सुशील कन्या को बचा लेना चाहिए। यह विचार कर उसने सेठजी को सारी बात बता दी। यह स्थिति सुनकर सेठजी को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने ताला तोड़ा और चंदना को भोंयरे से बाहर निकाला। चंदना कांपती आवाज से बोली-''पिताजी ! मुझे कड़ी भूख लग रही है, मैं तीन दिन से भूखी हूँ, पहले मुझे कुछ भोजन ला दो। सेठजी अशांत व उद्विग्न हृदय से भोजन लेने गये, किन्तु उन्हें कुछ नहीं मिला उनकी दृष्टि में पशुओं के लिए पकाए हुए उड़द का भोजन आया। उन्होंने वहीं रखे एक सूप के कोने में उड़द के बाकुले लेकर चंदना को भोजन के लिए दे दिए और उसकी बेड़ियाँ तुड़वाने के लिए लुहार को बुलाने स्वयं ही चल दिए।

आँखों में आँसू - चंदना सूप में रखे हुए उड़द के बाकुलों को लेकर देहली में पहुँची। एक पैर देहली के भीतर तथा एक पैर देहली के बाहर रखकर, चौखट का सहारा लेकर खड़ी हो गई। उस दशा में अपनी पिछली सारी बातें स्मरण में आने लगी। 'कहाँ तो मेरी माता धारिणी और कहाँ मूला सेठानी ? कहाँ मेरा राजघराना और कहाँ भोंयरे में तीन दिन की जेल ? अरे ! मैंने पूर्व भव में न जाने कैसे कर्म किये ? जिनका मुझे ऐसा फल भोगना पड़ रहा है। मैं सोचती थी कि 'अब धनावह सेठ के घर पहुँचकर मेरे दुःखों का अन्त आ गया है, परन्तु कर्म न जाने कितने कठोर हैं कि वे अधिक से अधिक दुःख दे रहे हैं। मूला सेठानी पीहर से लौटने पर, मेरे साथ कैसा व्यवहार करेगी ? ऐसा सोचते-सोचते उसकी आँखों से आँसू बह चले।

भगवान का पारणा - इधर भगवान महावीर को दीक्षा लिए ग्यारह वर्ष हो चुके थे। अब केवलज्ञान उत्पन्न होने में एक वर्ष से कुछ अधिक समय शेष रह गया था। भगवान अपने पूर्व भवों के कर्मों को क्षय करने के लिए कठोर तपश्चर्याएँ कर रहे थे। इस बार उन्होंने तेरह बोल का दुष्कर अभिग्रह ग्रहण किया।

द्रव्य से - 1. सूप के कोने में
2. उड़द के बाकुले हो।

क्षेत्र से - 3. बहराने वाली (दान देने वाली) देहली से एक पैर बाहर तथा दूसरा पैर भीतर करके चौखट के सहारे खड़ी हो।

काल से - 4. तीसरे प्रहर में जब सभी भिखारी भिक्षा लेकर लौट गये हों।

भाव से - 5. अविवाहिता हो।
6. राजकन्या हो।
7. बाजार में बिकी हुई हो (दासी अवस्था को प्राप्त हो)।
8. हाथों में हथकड़ी हो।
9. पैरों में बेड़ी हो ।
10. सिर मुंडा हुआ हो।
11. शरीर पर काछ पहने हुए हो।
12. तीन दिन की भूखी हो।
13. आँखों में आँसू हो।

इन अभिग्रहों को लिये भगवान प्रतिदिन नगर में घूमते और अभिग्रह पूर्ण न होने से लौट जाते थे। कौशाम्बी की महारानी मृगावती और महामंत्री की स्त्री ने भी बहुत उपाय किये। उनके कहने से महाराज और महामंत्री ने भी नैमित्तिकों से पूछकर अभिग्रह जानने का प्रयत्न किया, पर पता न चल सका। भगवान को अभिग्रह लिए पाँच माह और पच्चीस दिन व्यतीत हो गए। श्रमण महावीर ध्यान की स्थिति पूर्ण कर नगर में भिक्षार्थ पर्यटन करते हुए धनावह सेठ के भवन की ओर जा रहे थे। आज बन्दिनी नारी के मुक्ति दिवस की बेला आ गई थी। छब्बीसवें दिन भगवान चंदना के यहाँ पधारे। उसने सूप में रहे हुए बाकुलों को दिखाते हुए, अत्यंत भक्तिपूर्वक कहा-''भगवन् ! यद्यपि ये आपको दान देने योग्य नहीं है, फिर भी यदि ये आपको कल्पते हों तो इन्हें ग्रहण करें।'' भगवान ने ज्ञान से जान लिया कि अभिग्रह में एक बोल कम है यह देखकर लौट गये। भगवान को लौटते देख चंदना की आंखों में आंसू आ गये, तब दुबारा भगवान चंदना के घर लौटे और अभिग्रह पूर्ण होने पर आहार ग्रहण किया। (कहीं-कहीं कथा भाग में ऐसा वर्णन भी मिलता है कि जब भगवान पधारे तब चन्दना की आँखों में पहले से ही आंसू थे) चंदना ने अत्यंत हर्ष के साथ भगवान को बाकुले बहरा दिये। प्रभु ने वहीं पारणा कर लिया।

भगवान महावीर का यह घोर अभिग्रह केवल उनकी कठोर तपः साधना का अंशमात्र बनकर ही नहीं रहा अपितु इस अभिग्रह ने युग की हवा बदल दी। अभिशाप ग्रस्त नारी जाति के उद्धार और कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर दिया। नारी जाति को दासता से मुक्ति दिलाने में मुक्ति के संदेश वाहक भगवान महावीर का यह अभिग्रह ऐतिहासिक महत्व रखता है।

दुःखों का अन्त - भगवान का अभिग्रह चंदनबाला के हाथों पूरा हुआ देखकर देवता चंदना पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने देव-दुंदुभी के साथ चंदना के घर (धनावह सेठ के घर) साढ़े बारह करोड़ सोनैयों की वृष्टि की और चंदना के सिर पर बाल बनाये, उसको सुन्दर वस्त्र पहनाए तथा पैरों की हथकड़ी-बेड़ी तोड़कर, उसे मूल्यवान आभूषण पहनाए। देव-दुंदुभी बजी हुई सुनकर और चंदना के हाथों से अभिग्रह फला जानकर महाराजा, महारानी सहित सहस्त्रों पुरजन भी वहाँ आ पहुँचे। सभी ने चंदना की बहुत प्रशंसा की।

जब महारानी को जानकारी हुई कि 'यह मेरी बहन की लड़की वसुमति है तथा राजा ने जाना कि मेरी साली की लड़की है, तो उन्हें बहुत दुःख हुआ कि इसकी ऐसी दशा मेरे कारण हुई। उन्होंने इसके लिए उससे बार-बार क्षमा याचना की और बहुत आग्रह करके उसे राज प्रासाद में ले गए। फिर शतानिक ने दधिवाहन की खोज कराई और उनका राज्य उन्हें पुनः लौटा दिया।

चंदना का संसार त्याग - चंदना को अब वैराग्य हो चुका था, वह इसी प्रतीक्षा में संसार में रह रही थी कि जब भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न होगा, तब मैं उनके समक्ष दीक्षा ले लूँगी।

उसके एक वर्ष बाद जब भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तब उसने राज्य सुख को छोड़कर कई स्त्रियों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। वह भगवान की सबसे बड़ी शिष्या हुईं और उनकी शिष्याओं की उत्कृष्ट संख्या 36 हजार तक पहुँची।

अनुशासन - महासती चन्दनबालाजी का अनुशासन बहुत अच्छा था। कौशाम्बी की ही बात है, उनके पास उनकी मौसी मृगावतीजी भी दीक्षित हो गई थी। एक दिन वे कुछ महासतियों के साथ भगवान महावीर स्वामी के दर्शन के लिए 'चन्द्रावतरण' नामक उद्यान में गईं वहाँ पर सूर्यास्त तक चन्द्र और सूर्य देव मूल शरीर से उपस्थित थे। उनके प्रकाश से मृगावतीजी को सूर्यास्त की जानकारी न रह सकी। जब वे देव चले गए, तो मृगावतीजी अन्य साध्वियों के साथ उपाश्रय (संत-सतियां जहाँ ठहरे हों) पहुँची। वहाँ पहुँचते-पहुँचते अंधेरा हो चुका था।

चंदनबालाजी ने प्रवर्तिनी होने के कारण उपालम्भ देते हुए कहा-''आप जैसी उत्तम कुल शील वाली महासती को उपाश्रय से बाहर इतने समय तक ठहरना शोभा नहीं देता।''

विनय - मृगावतीजी ने अपने इस अपराध के लिए पैरों में पड़कर क्षमायाचना की। उसके बाद महासती चंदनबालाजी को शय्या पर सोते हुए नींद आ गई, पर महासती मृगावतीजी को उनके समीप ही अपने अपराध पर बहुत पश्चाताप करते-करते केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

उस समय सोती हुई चंदनबालाजी का हाथ संस्तारक (बिछाये हुए बिस्तर) से बाहर हो गया था। उधर एक सर्प आ निकला। मृगावतीजी ने हाथ को संस्तारक में कर दिया, इससे चंदनबालाजी की नींद खुल गई। उन्होंने पूछा-महासतीजी आप अभी तक सोई नहीं? आपने मेरा हाथ क्यों हटाया ? मृगावतीजी ने कहा-'हाथ को सर्प से बचाने के लिए।'

चंदनबालाजी - क्या आपको कोई ज्ञान पैदा हुआ है जो आपको अंधेरे में सर्प दिख गया ?

मृगावतीजी - आपकी कृपा।

चंदनबालाजी - प्रतिपाती (नाश होने वाला) अथवा अप्रतिपाती (अमर)?

मृगावती - अप्रतिपाती।

चंदनबालाजी को यह सुनते ही बहुत पश्चाताप हुआ, वे सोचने लगी कि मुझसे केवलज्ञानी की आशातना हुई। इसी प्रकार पश्चाताप करते-करते चंदनबालाजी को भी केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। इस प्रकार चंदनबालाजी में दूसरों पर अनुशासन के साथ ही स्वयं के जीवन में भी महान विनय था।

मोक्ष - चंदनबालाजी अंत समय में सभी कर्मों का क्षय करके मोक्ष पधारीं।

卐

(2) परम निष्ठावान कामदेव श्रावक

परिचय - अंगदेश की राजधानी चम्पानगरी में जितशत्रु राजा राज्य करते थे। वहाँ कामदेव नामक प्रतिष्ठित सर्वमान्य सेठ रहते थे। उनकी 'भद्रा' नामक सुरूपा भार्या (पत्नी) थी। उनके कई छोटे-बड़े सुयोग्य पुत्र भी थे। पत्नी और पुत्र सभी कामदेव के अनुकूल थे। कामदेव के पास 18 करोड़ स्वर्ण मुद्राओं का धन था। उनमें से छः करोड़ कोष में, 6 करोड़ वृद्धि (ब्याज व्यापार) में तथा 6 करोड़ स्वर्ण मुद्राएं घर विस्तार में लगी थी। कामदेव के छह गोकुल थे। प्रति गोकुल में 10,000 (दस हजार) पशु थे।

इस प्रकार कामदेव गृहस्थ परिवार, सम्पत्ति, सुख, प्रतिष्ठा, मान्यता आदि सब से सम्पन्न थे।

धर्म-ग्रहण - एक बार भगवान महावीर स्वामी उस नगरी के बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य (व्यन्तरायत) में पधारे। ये समाचार पाकर कामदेव भगवान के दर्शन करने तथा वाणी सुनने गये। भगवान की वाणी सुनकर उनकी जैन धर्म पर श्रद्धा हुई। उन्हें लगा कि परिवार, धन, प्रतिष्ठा आदि की यह मेरी सारी सम्पन्नता वास्तव में सुखदायी नहीं है, न यह परभव में साथ चलेगी। विश्व में प्राणी के लिए केवल एक धर्म ही सच्चा सुखदायी है और भव-भव का साथी है इसलिए मुझे संसार त्याग करके दीक्षा ग्रहण करना उचित है परन्तु अभी मुझमें उतना सामर्थ्य नहीं है। अतः दीक्षा नहीं तो मुझे श्रावक व्रत तो ग्रहण करना ही चाहिए। यह सोचकर उन्होंने भगवान से सम्यक्त्व और श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किये। पीछे नवतत्व की जानकारी आदि करके 21 गुण सम्पन्न श्रेष्ठ श्रावक बन गये। यहाँ तक कि भगवान के श्रावकों में वे नामांकित मुख्य श्रावकों में गिने जाने लगे।

कामदेव परमनिष्ठावान श्रावक थे। अपार समृद्धि के बीच वह तप और त्याग प्रधान जीवन ही जीते थे। 14 वर्ष तक उन्होंने गृहस्थ व्यवहार चलाते हुए श्रावकत्व का पालन

किया, फिर उन्हें लगा कि ''गृहस्थी के झंझटों से धर्म-चिंतन, धर्म-करणी में बहुत बाधा पड़ती है।'' तब उन्होंने गृहस्थी का सारा भार अपने बड़े पुत्र पर डालकर निवृत्ति ले ली। वे पौषध शाला में ही जाकर रहने लगे तथा भगवान द्वारा कथित धर्म प्रज्ञप्ति के अनुसार जीवन बिताने लगे।

पिशाच का पहला उपसर्ग – एक बार की बात है, उन्होंने पौषध किया था। दिन तो बीत गया, परन्तु जब आधी रात का समय हुआ, पौषधशाला के बाहर एक 'मिथ्यादृष्टि देव' आया। उसने भयंकर पिशाच का रूप बनाया। टोपले सा सिर, बाहर निकली हुई लाल-लाल आँखें, सूपड़े से कान, भेड़–सा नाक, घोड़े की पूंछ-सी मूंछे, ऊंट के जैसे लम्बे होंठ, फावड़े के जैसे दांत, लपलताती जीभ-इस प्रकार पिशाच का रूप बहुत ही विकृत था। ताड़-सा लम्बा, कपाट-सा चौड़ा, काँख में सर्प लपेटे, वह पिशाच हाथ में चमचमाता नीला खड्ग (तलवार) लेकर भयानक शब्द करता हुआ पौषधशाला में कामदेव के पास आया और बोला-अरे ! कामदेव! मृत्यु के चाहने वाले कुलक्षण! अशुभ दिन के जन्मे ! लज्जादि रहित ! धर्म मोक्ष को चाहने वाले ! तुझे पौषध आदि व्रत से डिगना उचित नहीं लगता परन्तु आज यदि तू धर्म से नहीं डिगता है, उसे नहीं छोड़ता है तो मैं आज इस खड्ग से तेरे खण्ड-खण्ड कर दूँगा, जिससे तू अकाल में ही दुःख पाता हुआ मर जाएगा।'

पिशाच-रूपी देव के ऐसा कहने पर कामदेव भयभीत नहीं हुए, क्षुब्ध नहीं हुए, भागे भी नहीं परन्तु उपसर्ग समझ कर सागारी संथारा (अनशन) ग्रहण कर लिया और समभाव पूर्वक धर्म-ध्यान करते रहे। ऐसा देखकर उस देव ने कामदेव को अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही, परन्तु कामदेव के तन-मन में कोई अंतर नहीं आया। तब देव ने क्रुद्ध होकर, भोंहें चढ़ा कर खड्ग से कामदेव के खण्ड-खण्ड करने जैसा अनुभव करा दिया। उससे कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा। ऐसी महावेदना को सहन करना बहुत कठिन था, फिर भी कामदेव बहुत ही शान्ति से उस महावेदना को सहन करते रहे।

हाथी का दूसरा उपसर्ग – यह देखकर उस देव को निराशा हुई। वह पौषधशाला से बाहर निकला। फिर दूसरी बार में उसने अपना पर्वत-सा लम्बा-चौड़ा, तीखे-तीखे दाँत वाला, लम्बी-सी सूंडवाला, मेघ-सा काला और मदमाते भयंकर हाथी जैसा रूप बनाया तथा पौषधशाला में आकर कहा- 'अरे ! कामदेव ! मृत्यु चाहने वाले ! इत्यादि ! यदि तू धर्म से नहीं डिगता, व्रतों को नहीं छोड़ता तो अभी तुझे सूंड से पकड़कर पौषधशाला से बाहर ले जाऊँगा। वहां तुझे आकाश में उछाल कर फिर तीखे दाँतों पर झेलूंगा। फिर भूमि पर डाल कर पैरों तले तीन बार रौंदूगा, जिससे तू अकाल में ही दुःख पाता हुआ मर जाएगा।'

कामदेव, हाथी के इन वचनों को सुनकर भी न डरे, वरन् पहले के समान ही निर्भय,

धर्म-ध्यान करते रहे। यह देख उस हाथी रूप-धारी देव ने कामदेव को अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही परन्तु कामदेव के तन-मन में कोई अंतर नहीं आया। तब देव ने क्रुद्ध होकर कामदेव को सूंड से पकड़ कर पौषधशाला से बाहर निकाला आकाश में उछाला, तीखे-तीखे दाँतों पर झेला और भूमि पर डाल कर तीन बार पैरों से बहुत रौंदा, इस प्रकार का अनुभव करा दिया। उससे कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा। फिर भी कामदेव उस कठिन वेदना को बहुत शांति से ही सहन करते रहे।

सर्प का उपसर्ग – यह देखकर देव को बहुत निराशा हुई। उसका दूसरा उपसर्ग भी कामदेव को डिगा नहीं सका। तब वह पौषधशाला से बाहर निकला। तीसरी बार उसने मसी (स्याही) सा काला, चोटी-सा लम्बा, लपलपाती दो जीभ वाला, लोही-सी आँखों वाला, बहुत बड़े फणवाला, आँखों में भी विष वाला, महा-फूंकार करता, भयंकर सर्प का रूप बनाया और पौषधशाला में आकर कहा - अरे ! कामदेव ! मृत्यु चाहने वाले ! इत्यादि। यदि तू धर्म से नहीं डिगता, व्रतों को नहीं छोड़ता तो मैं अभी सर-सर करता तेरी काया पर चढ़ जाऊँगा। पिछली ओर से फांसी के समान तीन बार तेरी ग्रीवा (गले) को लपेटूँगा। फिर विष वाली तीखी दाढ़ों से तेरे हृदय पर ही कई दंश दूंगा, जिससे तू अकाल में ही दुःख पाता हुआ मर जाएगा।'

कामदेव, सर्प के इन वचनों को सुनकर भी पहले के समान ही निर्भय और निश्चल धर्म-ध्यान में लीन रहे। यह देख उस सर्प रूप-धारी देव ने कामदेव को अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही परन्तु कामदेव के तन-मन में कोई अंतर नहीं आया। तब देव क्रुद्ध होकर सर-सर करता कामदेव की काया पर चढ़ा। पिछली ओर से फाँसी के समान ग्रीवा को तीन बार लपेटा, फिर विष वाली दाढ़ों से हृदय पर दंश दिये। उससे भी कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा। फिर भी कामदेव उस कठिन वेदना को बहुत शांति से ही सहन करते रहे।

यह देखकर देव पूरा निराश हो गया। वह पिशाच, हाथी और सर्प के तीन-तीन बड़े उपसर्ग करके भी कामदेव को धर्म और व्रत से डिगा नहीं सका। तब वह पौषधशाला से बाहर निकला। इस बार उस देव ने अपना वास्तविक रूप देव का ही रूप बनाया। चमकता सुनहरा शरीर, उज्ज्वल बहुमूल्य वस्त्र, भांति-भांति के उत्कृष्ट कोटि के हार आदि आभूषणयुक्त तथा दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाला दिव्य वह देव-रूप - फिर उसने पौषधशाला में आकर कहा -

प्राण जाय पर प्रण नहीं जाय।
देह जाय पर धर्म नहीं जाय ।।

देव प्रशंसा – 'हे कामदेव ! श्रमणोपासक ! (साधु की उपासना करने वाले!) तुम धन्य हो। तुम बड़े पुण्यवान हो, तुम कृतार्थ हो, तुम सुलक्षण हो, तुम्हारा जन्म और जीवन सफल है, क्योंकि निर्ग्रन्थ प्रवचन (जैन धर्म) में ऐसी दृढ़ श्रद्धा है कि देवता भी तुम्हें डिगा नहीं सकते।

'हे देवानुप्रिय! (यह आर्य सम्बोधन है) पहले देवलोक के इन्द्र ने अपनी सभा के बीच तुम्हारी प्रशंसा करते हुए कहा था कि कामदेव श्रमणोपासक निर्ग्रन्थ प्रवचन में इतने दृढ़ है कि उन्हें देव-दानव कोई भी धर्म से डिगा नहीं सकता।' धर्म-दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए मैं यहाँ आया था। तीन बड़े-बड़े उपसर्ग देकर अब मैंने आज प्रत्यक्ष ही देख लिया है कि आपकी निर्ग्रन्थ प्रवचन (जैन धर्म) में अचल श्रद्धा है। हे देवानुप्रिय ! मैंने जो आपको उपसर्ग दिये, उसके लिए मैं आपसे बार-बार क्षमा चाहता हूँ। आप मुझे क्षमा करें। आप क्षमा करने योग्य हैं। अब मैं पुनः इस प्रकार कभी आपको उपसर्ग नहीं दूंगा।'

इस प्रकार उस देव ने कामदेव की प्रशंसा की और उन्हें इन्द्र द्वारा की गई प्रशंसा सुनाई। उनको अपने यहाँ आने का और उपसर्ग देने का कारण बताया तथा उनको उपसर्ग में भी धर्मदृढ़ रहने वाला बता कर उनके पैरों में पड़ कर उसने बार-बार क्षमा-याचना की। फिर वह देवता जहाँ से आया था, उधर चला गया।

समवसरण में – कामदेव ने अपने को निरूपसर्ग (उपसर्ग रहित) जान कर अपना सागारी संथारा पार लिया। दिन उगने पर उन्होंने अपनी नगरी में भगवान को पधारे हुए जाना इसलिए पौषध पारने के पहले ही भगवान के दर्शन करने तथा वाणी सुनने के लिए गये।

भगवान ने सबको पहले धर्म-कथा सुनाई। फिर धर्म-कथा समाप्त होने पर सबके सामने कामदेव से कहा-'क्यों कामदेव ! क्या पिछली रात को तुम्हें देवता के द्वारा पिशाच, हाथी और सर्प-रूप में तीन-तीन बार भयंकर उपसर्ग हुए ? इत्यादि देवता के आने से लेकर चले जाने तक का बीता वृत्तान्त सुनाकर भगवान ने कहा-'कामदेव ! क्या यह सच है ? कामदेव ने कहा- हाँ सच है।

साधु-साध्वियों को शिक्षा – कामदेव के द्वारा हाँ भरने पर भगवान ने बहुत से साधु-साध्वियों को संबोधन करके कहा-आर्यो ! '' जब गृहस्थावास में रहने वाला श्रमणोपासक श्रावक भी देव, मनुष्य और तिर्यंच संबंधी उपसर्गों को समभावपूर्वक सहन कर धर्म ध्यान में दृढ़ रहता है तो निर्ग्रन्थ मुनियों को तो और भी अधिक परिषह सहन करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। इसी में मुनि-धर्म की शोभा है।'' भगवान के इन वचनों को सभी श्रमण निर्ग्रन्थों ने विनयपूर्वक जीवन में उतारने का संकल्प किया।

देवलोक गमन तथा मोक्ष – उसके पश्चात् कामदेव श्रावक ने भगवान से कुछ प्रश्न किये और उत्तर प्राप्त कर अपनी शंकाएं दूर की तथा जिज्ञासाएं पूर्ण कीं। पश्चात् वे वन्दन-नमस्कार करके अपने घर को लौट गये।

कामदेव श्रावक ने उसके पश्चात् और भी अधिक धर्म-ध्यान किया। श्रावक की 11 प्रतिमाओं का आराधन कर 20 वर्ष तक श्रावकत्व का पालन किया। अन्त में उन्होंने अपने जीवन में जो कोई दोष लगा, उसकी आलोचना प्रतिक्रमण करके संथारा ग्रहण किया। एक मास का अनशन होने पर वे मृत्यु के अवसर पर काल करके पहले देवलोक में देव-रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ से वे महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पूर्ण आराधना कर सिद्ध बुद्ध मुक्त होंगे। धन्य है कामदेव श्रावक की धर्मदृढ़ता !

卐

(3) सेवामूर्ति मुनि नन्दीषेण

मगध देश के नन्दी ग्राम में एक गरीब ब्राह्मण था, उसके सोमिला नाम की पत्नी से नन्दीसेन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह महा मन्दभागी था। बचपन में ही माता-पिता के मर जाने से अनाथ हो गया। उदर विकार से उसका पेट बढ़ गया तथा वह पूर्ण रूप से कुरूप था। स्वजनों ने उसका त्याग कर दिया था। किन्तु उसके मामा ने उसे अपने पास रख लिया था। उसके मामा की सात पुत्रियाँ थीं। युवावस्था प्राप्त होने पर मामा ने कहा कि - ''मैं तुझे एक पुत्री दूंगा। कन्या पाने के लोभ से वह मामा के घर के सभी काम करने लगा। पुत्रियों ने अपने पिता का वचन सुना तो सभी पुत्रियां नन्दीसेन के प्रति घृणा करने लगी। नन्दीसेन चिन्तामग्न हो गया। उसके मामा ने विश्वास दिलाया कि किसी और कन्या के साथ तेरा विवाह करा दूंगा। मगर नन्दीसेन को विश्वास नहीं हुआ। वह सोचने लगा ऐसी दूसरी कन्या कौन होगी जो मेरे साथ लग्न करेगी ? इस प्रकार विचार कर वह संसार से उदासीन हो गया और उसकी विरक्ति बढ़ी। वह मामा का घर छोड़कर रत्नपुर नगर आया। उसकी दृष्टि एक युगल स्त्री-पुरुष पर पड़ी जो काम-क्रीड़ा में आसक्त थे। नन्दीसेन अपने दुर्भाग्य को कोसता हुआ मृत्यु की इच्छा से एकान्त में जाकर अपने गले में फाँसी लगाने को तैयार हुआ। उसी समय एक संत मुनिराज वहाँ आ पहुँचे और बोले-अरे भाई! तू ऐसा क्यों करता है? लड़का बोला- मरने का उपाय कर रहा हूँ। मुनिराज-क्यों, ऐसा कौन-सा संकट आ पड़ा है? जिससे यह घोर कर्म करने को तैयार हुआ है? लड़का बोला- मैं बहुत दुःखी हूँ। बचपन में ही मुझे अकेला छोड़कर मेरे माँ-बाप चल बसे। मेरे मामा मुझे अपने घर ले गए मगर मामी मुझसे द्वेष करने लगी। फिर मैं ठहरा कुरूप, जिससे सभी मेरा

तिरस्कार करते । इसलिए अब मेरे लिए मर जाना ही अच्छा है।'

मुनिराज ने उसे समझाया- यह सब, तेरे पूर्व भव के पाप का फल है. अपने किये कर्मों का फल तुझे भोगना ही पड़ेगा। आत्महत्या करने से तू फल भोगने से बच नहीं सकता। अगर तू आत्महत्या कर लेगा, तो आगे इससे भी भयंकर दुःख तुझे सहन करने पड़ेंगे। हाँ, किए कर्मों का फल शान्ति के साथ भोगेगा, तो तेरे पूर्वकृत कर्म नष्ट हो जाएँगे। जिससे तू भविष्य में सुखी होगा।

मुनि के वचन सुनकर लड़का समझ गया। वह मुनि के चरणों में गिर पड़ा और बोला- मुझे सन्मार्ग बताइए। मुनि ने धर्मोपदेश दिया जिससे दीक्षित होकर वह लड़का नन्दीषेण नामक साधु बन गया। उन्होंने सेवा करना ही अपना मुख्य ध्येय बनाया। वे रोगी, तपस्वी आदि साधुओं की सच्चे मन से सेवा करने लगे। छोटे, बड़े सभी उनकी सेवा भक्ति से प्रसन्न हो जाते थे।

नन्दीषेण मुनि की कीर्ति इतनी फैली कि इन्द्र ने भी अपनी सभा में उनकी तारीफ की। दो मिथ्यावादी देवों ने सोचा-ऐसा सेवाभावी नन्दीषेण कौन है ? चलो, उसकी परीक्षा की जाए। दोनों देव परीक्षा करने चले। एक बना बूढ़ा-रोगी साधु और दूसरा बना साधारण साधु।

एक दिन नन्दीषेण मुनि बेले का पारणा कर रहे थे। उसी समय साधारण साधु वहाँ आ पहुँचा। उसने कहा-तुझे लोग सेवाभावी कहते हैं और तू यहाँ बैठा-बैठा माल उड़ा रहा है। अरे नन्दीषेण ! इसी गाँव के बाहर एक अपंग बूढ़े साधुजी बैठे हैं। उन्होंने कितने ही दिनों से कुछ भी नहीं खाया-पिया है। तू सेवाभावी गिना जाता है, जा उनकी सेवा कर।

यह सुनकर नन्दीषेण ने एक भी कौर मुँह में नहीं डाला। भोजन का पात्र एक किनारे रख दिया और खड़े हो गए। आठ-दस घरों में घूमकर, अचित्त पानी लिया और गाँव के बाहर पहुँचे। साधु को देखकर वन्दन किया । पानी उनके सामने रख दिया। बूढ़ा साधु उछल पड़ा। कहने लगा हाय ! मैं कब से दुःखी हो रहा हूँ। कब का संदेश भेजा है, तू अब आया है।

नन्दीषेण ने कहा - क्षमा कीजिए महाराज। निर्दोष पानी लाने के लिए घूमना पड़ा। इसी से देर हो गई। चलो, आपको गाँव में ले चलूँ।

बीमार बना साधु फिर बनावटी क्रोध से बोला - मूर्ख कहीं के। मैं हिल तो सकता नहीं और तू चलने की बात करता है। यह कहते तुझे शर्म नहीं आती।

नन्दीषेण ने कहा-'प्रभो ! मैं आपको अपने कंधे पर बिठाकर ले चलूँगा।' इतना कहकर उन्होंने सहारा देकर उठाया और अपने कंधे पर बिठा लिया और पानी के पात्र की झोली उठाकर चलने लगे।

वह बनावटी मुनि भारी-भारी होने लगा। बेले-बले उपवास के कारण नन्दीषेण मुनि का शरीर अशक्त हो गया था। मगर उस देव को तो मुनि की परीक्षा करनी थी। साथ वाले

दूसरे मुनि ने कहा- ''अरे ! जवान होकर इस तरह काँपता हुआ चल रहा है, इससे वृद्ध संत को कितना कष्ट हो रहा है ?

कंधे पर बैठे मुनि ने कहा -''अरे नन्दीषेण इतना तेज चल रहा है कि मेरा शरीर सहन नहीं कर सकता।'' जब वे धीरे-धीरे चलने लगे और कहा -''अच्छा महाराज ! अब अच्छी तरह से चलता हूँ। और इस प्रकार सावधानी से चलने लगे, जिससे पात्र से पानी नहीं छलके और मुनिराज को पीड़ा न हो।''

अब भी कसर रह गई थी। ऊपर बैठे मुनि को शौच की शंका हुई। नन्दीषेण उसे नीचे उतारें- तब तक तो उसने अशुचि कर दी। नन्दीषेण के कपड़े लथ-पथ हो गए। उनका शरीर भी मल-मूत्र से भर गया। चारों ओर बदबू फैल गई। लेकिन नन्दीषेण मुनि एक ही बात सोच रहे थे- अहो ! इन वृद्ध मुनि को कितना कष्ट हो रहा होगा ? जल्दी उपाश्रय में ले जाकर इनकी सेवा कर ऐसी सार-संभाल करूँ कि ये अच्छे हो जाएँ।

''धन्य है सेवाभावी नन्दीषेण।''

इतने में स्थानक आ गया। नन्दीषेण मुनि ने पात्रे की झोली एक तरफ रखकर मुनि को धीरे से नीचे उतारा। मल-मूत्र साफ करने के लिए ज्यों ही उन्होंने पीछे फिर कर देखा, तो न वहाँ साधु और न वहाँ मल-मूत्र ! सभी कुछ गायब हो गया।

नन्दीषेण मुनि को दो दिव्य ज्योतियाँ दिखाई दीं। दिव्य वाणी भी उन्हें सुनाई दी - ''धन्य हो, मुनिवर ! आपकी सेवा अद्‌भुत है। आप सचमुच वैसे ही हैं जैसा कि हमने इन्द्र महाराज से सुना था। हम आपकी परीक्षा लेने आए थे और हमें संतोष हुआ है। हमारे द्वारा कृत अपराध के लिए हमें क्षमा करें। आप कुछ माँग लीजिए।''

नन्दीषेण मुनि ने कहा-''वीतराग धर्म से बढ़कर और क्या है, जो माँगू ? मुझे और कुछ नहीं माँगना है। मैने अपने धर्म का पालन किया है, किसी पर उपकार नहीं किया है।'

दोनों देव वन्दन - नमस्कार कर खुशी-खुशी चले गए। कहाँ आत्महत्या करने को तैयार हुआ लड़का और कहाँ सेवामूर्ति नन्दीषेण मुनि। धर्म के प्रताप से कितना बड़ा परिवर्तन हो गया।

सेवा धर्म गहन बड़ा, अनुभव का यह बेण।
सेवा से सिद्धि मिले, देखो नन्दीषेण।।

काव्य विभाग

(1) बारह भावना (भुधरदासजी कृत)

1. अनित्य भावना (भरत चक्रवर्ती)

राजा राणा छत्रपति, हथियन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार॥

2. अशरण भावना (अनाथी मुनि)

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरति विरिया जीव को, कोई न राखन हार॥

3. संसार भावना (धन्ना शालीभद्र जी)

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहुँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥

4. एकत्व भावना (नमि राजर्षि)

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
या कबहुँ इस जीव को, साथी सगा न कोय॥

5. अन्यत्व भावना (मृगापुत्र जी)

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर संपत्ति प्रकट ये, पर है परिजन लोय॥

6. अशुचि भावना (सनत्कुमार चक्रवर्ती)

दिपे चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥

7. आश्रव भावना (राजा समुद्रपाल)

जगवासी घूमे सदा, मोह नींद के जोर।
सब लूटे नहीं दीसता, कर्म चोर चहुँ ओर॥

8. संवर भावना (केशी गौतम स्वामी जी)

मोह नींद जब उपशमें, सद्गुरु देय जगाय।
कर्म चोर आवत् रुके, तब कुछ बने उपाय॥

9. निर्जरा भावना (अर्जुनमाली)

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार॥

10. लोक भावना (शिव राजर्षि)

चौदह राजू उत्तंग नभ, लोक-पुरुष-संठान।
तामे जीव अनादि से भरमत है बिन ज्ञान॥

11. बोधि दुर्लभ भावना (भ. ऋषभदेव के 98 पुत्र)

धन-जन-कंचन राज सुख, सबहिं सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान॥

12. धर्म भावना (धर्मरुचि अणगार)

याचे सुरतरु देय सुख, चिन्तित चिन्ता रैन।
बिन याचे बिन चिन्तिये, धर्म सकल सुख दैन॥

(2) साता कीजो जी

साता कीजोजी श्री शान्तिनाथ प्रभु।
शिव सुख दीजोजी, साता कीजोजी॥टेर॥

शान्तिनाथ है नाम आपका, सबने साताकारीजी।
तीन भुवन में चावां प्रभुजी, मृगी निवारीजी॥1॥कि साता...

आप सरीखा देव जगत में, और नजर नहीं आवेजी।
त्यागी ने वीतरागी मोटा, मुझ मन भावेजी॥2॥कि साता...

शान्ति जाप मन माहीं जपता, चाहे सो फल पावेजी।
ताव तेजरो दुःख दारिद्र भय मिट जावेजी ।।3।।कि साता...

विश्वसेन राजाजी के नन्दन, अचला देवी जायाजी।
गुरु प्रसादे चौथमल कहे, घणा सुहाया जी ।।4 ।।कि साता...

(3) आत्म जागरण

उठ भोर भई टुक जाग सही, भज वीरप्रभु भज वीरप्रभु।
अब नींद अविद्या त्याग सही, भजवीर प्रभु भजवीर प्रभु।।1।।

जग जाग उठा तू सोता है, अनमोल समय यह खोता है।
तू काहे प्रमादी होता है, भज वीरप्रभु, भज वीरप्रभु।।2 ।।

यह समय नहीं है सोने का, है वक्त पापमल धोने का।
अरू सावधान चित्त होने का, भज वीरप्रभु भज वीरप्रभु।।3।।

तू कौन कहाँ से आया है, अब गमन कहाँ मन भाया है?
टुक सोच ये अवसर पाया है, भज वीरप्रभु भज वीरप्रभु ।।4।।

रे चेतन चतुर हिसाब लगा, क्या खाया खरचा लाभ हुआ।
निज ज्ञान जगा तू सम्भाल हिया, भज वीरप्रभु भज वीरप्रभु ।।5।।

गति चार चौरासी लाख रुला, ये कठिन-कठिन शिवराह मिला।
अब भूल कुमार्ग विषय मत जा, भज वीरप्रभु भज वीरप्रभु।।6।।

जवाहर वाणी

तुम धन से चाहे जितना प्रेम करो,
प्राणों से भी अधिक उसकी रक्षा करो,
उसके लिए भले ही जान दे दो,
लेकिन धन अन्त में तुम्हारा
नहीं रहेगा-नहीं रहेगा।
वह दूसरों का बन जाएगा।

-दिव्य जीवन से साभार

सामान्य ज्ञान विभाग

(1) चार बातें

चार गति के कारण

1. नरक गति के चार कारण-

1. **महाआरंभ**-पन्द्रह कर्मादान का आसक्ति पूर्वक सेवन करना।
2. **महापरिग्रह** - महातृष्णा और महा ममत्व रखना।
3. **मांसाहार**-मद्य, मांस अण्डे आदि का आहार करना।
4. **पंचेन्द्रिय वध**-शिकार करना, कसाई का काम करना, मछली अण्डे का व्यापार करना।

2. तिर्यंच गति के चार कारण

1. **माया** - माया करना (कपट करना), माया की बुद्धि रखना।
2. **निकृति**- गूढ़ माया करना अर्थात् झूठ सहित माया करना या एक कपट को छिपाने के लिये दूसरा कपट करना।
3. **अलीक वचन** - कन्या, भूमि, पशु आदि के विषय में झूठ बोलना।
4. **कूट तोल कूट माप** - देते समय कम तोलना, कम मापना, लेते समय अधिक तोलना, अधिक मापना, वस्तु में भेल सम्भेल करना।

3. मनुष्य गति के चार कारण

1. **प्रकृति की भद्रता**-प्राकृतिक (स्वाभाविक, बनावटी नहीं) भद्रता (सरलता) रखना।
2. **प्रकृति की विनीतता** - स्वभाव से ही नम्रता, विनयशीलता रखना।
3. **सानुक्रोशता**-अनुकम्पा (दया) भाव रखना।
4. **अमत्सरता**-मत्सरता (ईर्ष्या बुद्धि) का भाव न रखना।

4. देव गति के चार कारण

1. **सराग संयम** - प्रशस्त राग सहित साधुत्व पालना।

2. **संयमासंयम** - श्रावकत्व का पालना।

3. **बाल तप** - आत्म शुद्धि के अलावा अन्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु तप करना।

4. **अकाम निर्जरा** - अभाव, पराधीनता आदि कारण से अनिच्छापूर्वक परीषह और उपसर्ग सहन करना।

5. मोक्ष के चार कारण

1.सम्यग् ज्ञान 2. सम्यक् दर्शन 3. सम्यग् चरित्र 4.सम्यक् तप।

6. संसार घटाने के चार उपाय

1. दान 2. शील 3. तप 4. भावना

7. चार हमेशा छोड़ने योग्य -

1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ

8. चार हमेशा नहीं करने योग्य

1. क्लेश हो वैसा बोलना नहीं। 2. कर्ज हो वैसा खर्च करना नहीं।

3. रोग हो वैसा खाना नहीं। 4. पाप हो वैसे काम करना नहीं।

9. महान बनने के चार कारण

1. वाणी में मधुरता 2. दृष्टि में प्रसन्नता

3. मन में पवित्रता 4. व्यवहार में कुशलता

(2) सात कुव्यसन

किसी भी विषय में तल्लीन होने को अर्थात् आदत को व्यसन कहते हैं और बुरे विषयों में लीन होना कुव्यसन है। इससे जीव आकुल-व्याकुल हो जाता है और दुराचरण करता है। वे सात हैं -

1. जुआ - रुपये, पैसे या किसी प्रकार के धन वस्तु आदि से हार जीत का खेलना, शर्त या दाँव लगाना, सट्टा करना, आंकड़े लगाना आदि जुआ है। जीवन में भूलकर भी कभी जुआ नहीं खेलना चाहिए। इससे धन का नाश होता है एवम् दुनिया में बदनामी होती है।

2. चोरी - दूसरों के बिना दी हुई वस्तु लेना चोरी है। चोरी करने से जेल में जाना

पड़ता है और यातनाएं सहन करनी पड़ सकती है। धन और कीर्ति से तो हाथ धोना ही पड़ता है एवं सदा के लिए अविश्वास का पात्र बनता है।

3. शिकार - किसी भी पशु-पक्षी को निर्दयी होकर किसी भी शस्त्र से मारकर आनन्दित होना, मन में हिंसक प्रवृत्ति का पैदा होना शिकार है। शिकार नहीं करना चाहिए। इससे निर्दोष प्राणियों की जान तो जाती ही है, शिकार करने वालों को भी दुर्गति में जाना पड़ता है। इससे धर्म का नाश होता है।

4. मद्यपान - शराब, गांजा, भांग आदि नशीली वस्तुओं का सेवन करना मद्यपान है। पदार्थों को सड़ा-गला कर इसे तैयार किया जाता है। इसके निर्माण में अनेक त्रस जीवों की हिंसा होती है। स्वास्थ्य, सम्पत्ति, शक्ति एवं शान्ति का नाश शराब आदि नशीली वस्तुओं से होता है। इससे बुद्धि नष्ट हो जाती है। बीड़ी-सिगरेट आदि पीने से कैंसर जैसी भयंकर बीमारी हो जाती है।

5. मांस खाना - अण्डे, पंचेन्द्रिय जीव के कलेवर खाने वाले को मांस खाना कहते हैं। इससे दया-भाव नष्ट हो जाता है और मन में क्रूरता आती है। अंडा भी पूर्ण रूप से मांसाहार है।

6. वेश्यागमन - वेश्या के साथ गमन करना वेश्यागमन है। इससे तन और धन दोनों का विनाश होता है, दुनिया में अपयश फैलता है।

7. परस्त्रीरमण - अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों के साथ रमण परस्त्रीरमण है। इसके सेवन से जीवन बर्बाद हो जाता है। पर स्त्री में आसक्त मनुष्य अपना सब कुछ गंवा बैठता है, मर कर भी वह दुर्गति में जाता है।

अज्ञानतावश या कुसंगति से मनुष्य को कुछ ऐसे कुव्यसन लग जाते हैं कि उन्हें छोड़ना कठिन हो जाता है। ऐसे कुव्यसनों से क्या लाभ जो मानव को परतन्त्र बनाकर पतनगामी बना देते हैं। इन सप्त कुव्यसनों को त्यागे बिना आत्मा की पहचान नहीं हो सकती। इनके त्याग से व्यक्ति इस लोक में सुखी रहता है और परलोक में भी दुर्गति से बच जाता है।

(3) रात्रि भोजन

जीवन के लिए भोजन आवश्यक है। बिना भोजन किए, मनुष्य का दुर्बल जीवन टिक नहीं सकता। परन्तु भोजन करने की भी एक सीमा है। जीवन के लिए भोजन है, न कि भोजन के लिए जीवन ! आज के युग में भोजन के लिए जीवन बन गया है। खाने-पीने के संबंध में प्राचीन नियम प्रायः सब भुला दिये गये हैं। जो कुछ भी अच्छा बुरा सामने आता है, मनुष्य झटपट चट करना चाहता है। न मांस से घृणा है न मद्य से परहेज। न भक्ष्य का पता है न अभक्ष्य का, धर्म की बात तो दूर आज भोजन के फेर में अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान नहीं रखा जा रहा है।

आज का मनुष्य प्रातः बिस्तर से उठते ही खाने लगता है और दिन-भर पशुओं की तरह चरता रहता है। घर पर खाता है, मित्रों के यहां खाता है, बाजार में खाता है और तो क्या, दिन छिपते खाता है, रात में खाता है और बिस्तर पर सोते-सोते भी दूध का गिलास पेट में उड़ेल लेता है। पेट है या कुछ और ! दिन-रात इस गड्ढे की भरती होती रहती है फिर भी संतोष नहीं।

भारत के प्राचीन शास्त्रकारों ने भोजन के संबंध में बड़े ही सुन्दर नियमों का विधान किया है। भोजन में शुद्धता, पवित्रता, स्वच्छता और स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए, स्वाद का नहीं। मांस और शराब आदि अभक्ष्य पदार्थों से सर्वथा दूर रहना चाहिए और शुद्ध भोजन भी भूख लगने पर ही करना चाहिए। भूख के बिना भोजन का एक कौर भी पेट में डालना, अहितकर है। भूख लगने पर भी दिन में दो-तीन बार से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए और रात में भोजन करना तो कदापि उचित नहीं है।

जैन धर्म – जैन धर्म में रात्रि भोजन के निषेध पर बहुत बल दिया गया है। प्राचीनकाल में तो रात्रि भोजन न करना, जैनत्व की पहचान के लिए एक विशिष्ट लक्षण था। वह जैन कैसा, जो रात्रि में भोजन करे? रात्रि भोजन करने में जैन धर्म में हिंसा का दोष बतलाया है।

बहुत से इस प्रकार के छोटे-छोटे सूक्ष्म जीव होते हैं, जो दिन में सूर्य के प्रकाश में तो दृष्टि में आ सकते हैं, परन्तु रात्रि में तो वे कदापि दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। रात्रि में मनुष्य की आँखे निस्तेज हो जाती है। अतएव वे सूक्ष्म जीव भोजन में गिरकर बड़ा ही अनर्थ करते हैं। जीवों की अज्ञानता से हिंसा होती है और अपना नियम भंग होता है।

आज के युग में मनचले लोग तर्क किया करते हैं 'रात्रि में भोजन करने का निषेध सूक्ष्म जीवों को न देख सकने के कारण ही किया जाता है न'? अगर हम दीपक (बत्ती)

जला लें और प्रकाश कर लें, फिर तो कोई हानि नहीं ? उत्तर में कहना होगा कि दीपक आदि के द्वारा हिंसा से बचा नहीं जा सकता। दीपक,बिजली और चन्द्रमा आदि का प्रकाश चाहे कितने ही क्यों न हो; परन्तु वह सूर्य के प्रकाश जैसा सार्वत्रिक, अखण्ड, उज्ज्वल और आरोग्य-प्रद नहीं है। जीव-रक्षा और स्वास्थ्य की दृष्टि से सूर्य का प्रकाश ही सबसे अधिक उपयोगी है और कभी-कभी तो यह देखा गया है कि दीपक आदि के प्रकाश होने पर आस-पास के जीव जन्तु और अधिक सिमट कर पास आ जाते हैं, फलतः भोजन करते समय उनसे बचना, बड़ा ही कठिन कार्य हो जाता है।

विज्ञान – रात्रि में किया गया भोजन स्वास्थ्य के लिए भी अहितकारी है, हानिप्रद है। **विज्ञान** ने गहरे अनुसंधान के पश्चात् यह प्रतिपादित किया है कि मानव का तेजस केन्द्र जो भोजन को पचाने का कार्य करता है, सूर्यास्त के पूर्व सूर्य की गर्मी के कारण सक्रिय रहता है और सूर्यास्त के बाद तेजस केन्द्र थोड़ा सिकुड़ जाता है, निष्क्रिय हो जाता है। ऐसी स्थिति में जो कुछ खाया जाता है , वह पूरा पचता नहीं है और न पचने की स्थिति में हमारा तन व मन अस्वस्थ हो जाता है।

आयुर्वेद-सिद्धान्त की मान्यतानुसार रात्रि विश्राम के तीन या चार घण्टे पूर्व भोजन हो जाना चाहिए। रात्रि में किया गया भोजन आहार नली में ही पड़ा रहता है, पचता नहीं है,बल्कि सड़ता भी है और वैसा ही मल द्वारा निकल जाता है। इससे धीरे-धीरे पाचन क्रिया बिगड़ जाती है और बदहजमी का शिकार होना पड़ता है। इससे शरीर रोगी हो जाता है।

पद्म पुराण-में नरक के जो चार द्वार बताए गए हैं, उसमें रात्रि भोजन नरक का प्रथम द्वार बताया गया है। पुराणों में यहाँ तक कहा गया है कि सूर्यास्त होने के बाद भोजन करने वाले को अनजाने में अभक्ष्य खाने का पाप लगता है।

त्याग-धर्म का मूल संतोष में है। इस दृष्टि से भी दिन की अन्य सभी प्रवृत्तियों के साथ भोजन की प्रवृत्ति को भी समाप्त कर देना चाहिए तथा संतोष के साथ रात्रि में पेट को विश्राम देना चाहिए। ऐसा करने से भली-भांति निद्रा आती है, ब्रह्मचर्य पालन में भी सहायता मिलती है और सब प्रकार से आरोग्य की वृद्धि होती है। जैन-धर्म का यह नियम, पूर्णतया आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दृष्टि को लिए हुए हैं। शरीर-शास्त्र के ज्ञाता लोग भी रात्रि-भोजन को बल, बुद्धि और आयु का नाश करने वाला बतलाते हैं।

धर्म शास्त्र और वैद्यक-शास्त्र की गहराई में न जाकर, यदि हम साधारण तौर पर होने वाली रात्रि भोजन की हानियों को देखें, तब भी वह सर्वथा अनुचित ठहरता है। भोजन में कीड़ी (चींटी) खाने में आ जाए तो बुद्धि का नाश होता है, जूं खाई जाए तो जलोदर नामक

भयंकर रोग हो जाता है, मक्खी पेट में चली जाए तो वमन हो जाता है, छिपकली खा ली जाए तो कोढ़ हो जाता है, शाक आदि में मिलकर बिच्छु पेट में चला जाय तो तालू वेध डालता है, केश गले में चिपक जाए तो स्वर भंग हो जाता है; इत्यादि अनेक दोष रात्रि भोजन के प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं।

रात्रि का भोजन, अंधों का भोजन है। एक दो नहीं हजारों दुर्घटनाएं देश में रात्रि भोजन के कारण होती है। सैकड़ों लोग अपने जीवन तक से हाथ धो बैठते हैं।

अतः रात्रि भोजन सब प्रकार से त्याज्य है। जैन धर्म में तो इसका बहुत ही प्रबल निषेध किया गया है। अन्य धर्मों में भी इसे आदर की दृष्टि से नहीं देखा गया है। महात्मा गाँधी भी रात्रि भोजन को अच्छा नहीं समझते थे। उनकी मान्यता थी कि जो व्यक्ति रात्रि में भोजन करते हैं वे हिंसक हैं। लगभग 40 वर्ष से जीवन पर्यन्त रात्रि भोजन त्याग का व्रत गांधीजी ने बड़ी दृढ़ता के साथ पालन किया। यूरोप गये तब भी उन्होंने रात्रि भोजन नहीं किया।

आधुनिक सभ्यता के नाम पर हमें अपनी गौरवपूर्ण परम्पराओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। पशु-पक्षी भी रात्रि में नहीं खाते हैं तो क्या हम पशु-पक्षी से भी गए गुजरे हो गए हैं ? हमें अपनी परम्परा का दृढ़ता पूर्वक निर्वाह करना चाहिए। हम जो भी खाएँ सात्विक, शाकाहार तथा सूर्यास्त पूर्व ही खाएं। प्रत्येक जैन का कर्तव्य है कि वह रात्रि भोजन का त्याग करे। न रात्रि में भोजन बनाए और न खाएं। इसमें शारीरिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक लाभ सुनिश्चित है।

कीड़ी, कमेड़ी, कागला, रात पड्या नहीं खाय।
मिनख जमारो पाई ने, रात पड़े किम खाय ?

(4) दोहे

अहिंसा

1. सभी चराचर जीवों को, मानों आत्म समान।
   समदर्शी महावीर का, सदा यही फरमान॥
2. जीवों की रक्षा करे, रक्खे ठण्डी छाया।
   ऊँचा कुल में उपजे, सीधी मिलसी माया॥
3. अंग से बालक उपजे, अंग से उपजे जूं।
   बालक की रक्षा करे, जूं ने मारे क्यूं ॥
4. सुख दिया सुख होत है, दुख दिया दुख होय।
   आप हणे नहीं अवर को, तो आपको हणे न कोय॥
5. सब आगमों के मन्थन में, बात मिली है दोय।
   दुख दिया दुख होत है, सुख दिया सुख होय॥

वाणी

1. कष्ट किसी को ना पहुँचे, तुझसे ओ प्राणी,
   मुँह से तेरे जब निकले, तो बस अमृत वाणी॥
2. जिह्वा में शक्ति बड़ी, बिगड़ी देय बनाय।
   प्रेम के मीठे बोल से, दुश्मन हिलमिल जाय।
3. हरड़ा बहेड़ा आँवला, और बड़न को बोल।
   पहले तो कड़वा लगे, पीछे होत अमोल॥
4. मुख से जब भी बोल तू, कड़वे बोल न बोल।
   भक्ति भाव में लीन हो, मन की आँखे खोल।
5. ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
   औरन को शीतल करे, आप भी शीतल होय॥

।। णमो सिद्धाणं ।।

श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम परीक्षा - 2012

पत्र भाग-2

समय- 3 घंटे **पूर्णांक- 100**

नोट - सभी प्रश्नों के उत्तर, दिये गये निर्देशों के अनुसार, निर्धारित स्थान पर, इसी पत्र पर लिखे। उत्तर सुपाठ्य अक्षरों में स्पष्ट लिखें। पत्र पुनः लौटावें ।

I= foHkkx&35

Á'u 1-fuEu fjä LFkku¨a dh iwfrZ dhft,A 15

1) म्रां यानि जिसमें ________ कम हो और ________ ज्यादा हो ।
2) तिक्खुतो का पाठ ________ स्रा से लिया गया है।
3) जिससे पाप कटकर आत्मा शुद्ध बनें उसे ________ कहते हैं।
4) चउवीसंपि ________ तित्थयरा में पसीयंतु।
5) ________ दोषों को टालकर कायोत्सर्ग करना चाहिए।
6) सावज्जं जोगं पच्चक्खामि ________ पज्जुवासामि।
7) करण के साधन को ________ कहते हैं।
8) धारण व्रत को सर्वथा भंग करना ________ है।
9) आलोचना सूत्र को ________ का पाठ भी कहते हैं।
10) धम्मनायगाणं ________ धम्मवर चाउरन्त चक्कवट्टीणं।
11) प्रणिपात का अर्थ ________ होता है।
12) जीव विराधना न हो इसका उपाय ________ है ।
13) ब्रह्मचर्य से शरीर ________ एवं ________ रहता है।
14) अरिहंत द्वारा बताये हुवे तत्वों पर श्रद्धा रखना ________ है।
15) सामायिक पारते समय–कायोत्सर्ग में ________ लोगस्स का ध्यान करते हैं।

Á'u 2-lgh t¨Mh cukb;A cukdj uhps fjä LFkku ij fYk[¨A 15

1)	सिद्धाणं	–	कच्चा पानी
2)	कल्लाणं	–	चक्कर आना
3)	दग	–	स्तुति किये हुए
4)	संघाइया	–	कल्याण रूप
5)	भमलीए	–	आज्ञानुसार
6)	अभिथुआ	–	सिद्ध भगवान को
7)	जोगं	–	इकट्ठा किया हो
8)	पुरिसुतमाणं	–	मन से पूजन किये हुवे
9)	आणाए	–	पुरुषों में श्रेष्ठ
10)	महिया	–	व्यापार का

1) ________ – ________
2) ________ – ________
3) ________ – ________
4) ________ – ________
5) ________ – ________
6) ________ – ________
7) ________ – ________
8) ________ – ________
9) ________ – ________
10) ________ – ________

प्रश्न 3. निम्न प्रश्नों के उत्तर एक पंक्ति में दीजिए। 5

1) सामायिक में किसका त्याग किया जाता है ?
उत्तर ________
2) तीर्थंकर किसी पर प्रसन्न क्यों नहीं होते हैं?
उत्तर ________
3) आगार किसे कहते हैं ?
उत्तर ________
4) आराधना किसे कहते हैं ?
उत्तर ________
5) हमारे देव कौन हैं ?
उत्तर ________

rRo foÒkx & 25

Á'u 1-lgh fodYi pqudj fn;s x;s ¼ ½ LFkku ij fYk[¨A 15

1) दूसरे विहरमानजी का नाम है। ¼ ________ ½
1) बाहु स्वामीजी 2) सुजात स्वामीजी
3) युगमंधर स्वामीजी 4) भुजंग स्वामीजी
2) पन्द्रहवें विहरमानजी का नाम है। ¼ ________ ½
1) सुबाहु स्वामीजी2) सुरप्रभ स्वामीजी
3) देवयश स्वामीजी 4) ईश्वर स्वामीजी
3) ग्यारहवें विहरमानजी का नाम है। ¼ ________ ½
1) बाहु स्वामी 2) सुबाहु स्वामी
3) वज्रधर स्वामी 4) विशालधर स्वामीजी
4) उन्नीसवें विहरमानजी का नाम है । ¼ ________ ½
1) बाहु स्वामीजी 2) अनंतवीर्य स्वामीजी
3) देवयश स्वामीजी 4) महायश स्वामीजी
5) तीसरे गणधरजी का नाम है– ¼ ________ ½

1) वायुभूतिजी 2) अग्निभूतिजी
3) इन्द्रभूतिजी 4) मेतार्यजी

6) ग्यारहवें गणधर का नाम है। ¼ _____ ½
1) प्रभासजी 2) मौर्यप्रुाजी
3) सुधर्मा स्वामीजी 4) अकम्पित जी

7) करने योग्य 12 बोलों में क्या कीजे? ¼ _____ ½
1) प्रेम 2) धर्म
3) सेवा 4) परोपकार

8) करने योग्य 12 बोलों में क्या टालजे? ¼ _____ ½
1) कुधर्म 2) कुसंगत
3) कुवचन 4) कुशील

9) तप का श्रृंगार है ¼ _____ ½
1) शील 2) ज्ञान
3) क्षमा 4) ध्यान

10) संवर का श्रृंगार है ¼ _____ ½
1) अक्रिया 2) मोक्ष
3) निर्जरा 4) मौन

11) महापापी के 12 बोल में चौथा बोल है – ¼ _____ ½
1) आत्मघाती 2) गुरुद्रोही
3) विश्वासघाती 4) कृतघ्नी

12) महापापी, हिंसा में बताता है– ¼ _____ ½
1) सेवा 2) धर्म
3) ज्ञान 4) तप

13) दया के 12 बोल में आठवां बोल है– ¼ _____ ½
1) निरोगी होवे 2) दीर्घायु होवे
3) संतोषी होवे 4) चक्रवर्ती का पद मिले

14) जीवों पर दया करे तो मिलता है– ¼ _____ ½
1) तीर्थंकर पद 2) देवी का पद
3) गणधर का पद 4) मनुष्य का पद

15) महापापी के 12 बोल में ग्यारहवां बोल है– ¼ _____ ½
1) विश्वासघाती 2) बाल हत्या करने वाला
3) कृतघ्नी 4) वृक्ष काटने वाला

प्रश्न 2. एक पंक्ति में निम्न प्रश्नों के उत्तर निर्धारित रिक्त स्थान पर दें। 10

1) चार गतियों के नाम लिखें।
उत्तर _____

2) अन्तिम पर्याप्ति का नाम है ?
उत्तर _____

3) पहले प्राण का नाम है –
उत्तर _____

4) पांच शरीर के नाम लिखो –
उत्तर _____

5) पांच जाति के नाम लिखो ।
उत्तर _____

6) अज्ञान के नाम लिखो।
उत्तर _____

7) चार दर्शन के नाम लिखें।
उत्तर _____

8) चौथे गुणस्थान का नाम।
उत्तर _____

9) बारहवें गुणस्थान का नाम।
उत्तर _____

10) अन्तिम चार कर्मों के नाम लिखें।
उत्तर _____

dFkk foÒkx & 10

Á'u 1- lgh ¼✓½ o xYkr ¼✗½ crkb;sA 10

1) महाराजा 'दधिवाहन' की पत्नी का नाम वसुमति था ? ¼ ½
2) चंदनबाला की कीमत 20 लाख मोहरें रखी गई थी ? ¼ ½
3) धनावह सेठ की पत्नी का नाम मूला था? ¼ ½
4) भगवान महावीर ने चौदह बोलों का दुष्कर अभिग्रह ग्रहण किया? ¼ ½
5) कामदेव श्रावक के छह गोकुल थे ? ¼ ½
6) कामदेव श्रावक ने श्रावक की दस प्रतिमाओं का आराधन किया? ¼ ½
7) मृगावतीजी भगवान की सबसे बड़ी शिष्या थी? ¼ ½
8) नन्दीषेण के मामा की आठ प्रुत्रियां थी? ¼ ½
9) नन्दीषेण की परीक्षा लेने के लिये देव साधु रूप बनाकर आये। ¼ ½
10) नन्दीषेण के कपड़े कीचड़ से लथपथ हो गये थे। ¼ ½

dk0; foÒkx & 15

प्रश्न 1 निम्न दोहों को पूर्ण कीजिए। 15

1) दाम बिना, _____।
_____, देख्यो छान।।

2) धन–जन, _____।
_____, यथारथ ज्ञान।।

3) शान्ति जाप, ______________________ ।
______________________, भय मिट जावेजी।।

4) जग जाग, ______________________ ।
______________________, भज वीरप्रभु।।

5) गति चार, ______________________ ।
______________________, भज वीरप्रभु।।

I kekU; Kku foÒkx & 15

Á'u 1-fuEu Á'u¨ d mÙkj fu/kkfjr LFkku ij fYk[¨A 5

1) कूट तोल कूट माप किस गति में जाने का कारण है? ¼__________½
2) पंचेन्द्रिय वध किस गति में जाने का कारण है? ¼__________½
3) सानुक्रोशता किस गति में जाने का कारण है? ¼__________½
4) अकाम निर्जरा किस गति में जाने का कारण है? ¼__________½
5) बुरे विषयों में लीन होना क्या है? ¼__________½

प्रश्न 2.एक पंक्ति में उत्तर लिखिए। 5

1) महाआरंभ को परिभाषित कीजिए।

उत्तर ______________________________________

2) अलीक वचन को परिभाषित कीजिये।

उत्तर ______________________________________

3) मोक्ष जाने के चार कारण लिखिए।

उत्तर ______________________________________

4) संसार घटाने के चार उपाय लिखिए।

उत्तर ______________________________________

5) पद्म पुराण में रात्रि भोजन को किसका द्वार बताया है।

उत्तर ______________________________________

Á'u 3-lgh t¨Mh cukb;A cukdj uhp fjä LFkku ij fYk[¨A 5

1) एकत्व भावना – अर्जुनमाली
2) आश्रव भावना – नमि राजर्षि
3) निर्जरा भावना – सनत्कुमार चक्रवर्ती
4) धर्म भावना – राजा समुद्रपाल
5) अशुचि भावना – धर्मरूचि अणगार

1) __________ – __________
2) __________ – __________
3) __________ – __________
4) __________ – __________
5) __________ – __________